ओ३म्

कर्मोपासना

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

राजेन्द्र योगी

- : ओ३म् :-

वैदिक योग साधनाश्रम

करमनवीर त्रिमुहानी, सुसुवाही, लंका, वाराणसी

वैदिक योग साधनाश्रम का उद्देश्य-

१- अष्टांग योग का प्रचार-प्रसार।

२- योगाभ्यास के द्वारा बीमारियों से मुक्ति दिलाना।

३- जगह-जगह योग साधना के शिविर आयोजित करना।

४- समाज को फैले हुए छूत-छात, भेद भाव, जड़ पूजा, अंध विश्वास, ढोंग पाखण्ड से मुक्ति दिलाना।

५- वेद प्रचार, यज्ञ प्रसार, सतसंग द्वारा श्रेष्ठ सन्देश देना।

६- तामसिक व राजसिक वृत्तियों की उपेक्षा करके सात्विक खान-पान की ओर ले चलना।

७- आश्रम पर नित्य वेद मंत्रो, यज्ञ व भजनों का प्रसारण करना।

८- साहित्य, विज्ञप्ति, पोस्टरों के प्रकाशन की व्यवस्था करना।

९- संस्कारों का प्रशिक्षण करना-कराना।

१०- वार्षिक समारोह का आयोजन करना।

योगाभ्यास से लाभ

आज सारे विश्व में भोगवाद व अर्थवाद का प्रचार-प्रसार बहुत तेजी के साथ बढ़ रहा है। स्थायी सुख व शांति हेतु हम सभी ने विशाल भौतिक सम्पदायें इकठ्ठी कर ली है फिर भी हमारा ज़ीवन दिन पर दिन अशांतिमय होता जा रहा है, अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार हम होते जा रहें हैं। इन सबके निदान के लिए हमें योग साधना को ओर जाना पड़ेगा, इसके सिवा सुख व शांति का कोई अन्य मार्ग नहीं है।

१- शरीर का बेडौल होना, तोद निकलना व मोटापा बीमारी का घर है, इससे बचने हेतु योगाभ्यास कीजिए। २- शरीर को इकहरा, चुस्त व दुरूस्त बने रहने हेतु योग कीजिए। ३- किशोरावस्था फूलों की तरह महके, जवानी जिंदादिली से बीते, बुढ़ापा जल्दी आवे नहीं और आ गया तो स्वस्थ, निरोग व शांति प्रिय बना रहे, इसके लिए योग सीखें। ४- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने के लिए योग जाने। ५- मानसिक चिंता व तनाव से मुक्ति हेतु योग साधना करें। योगाभ्यास करने से मन, मस्तिष्क और शरीर स्वस्थ रहता है व इंद्रियों पर आत्म नियंत्रण रहता है।

93

कर्मोपासना

लेखक

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

गार्गी कन्या गुरूकुल महाविद्यालय

भयाचामड़, जनपद - अलीगढ़

फोन : 05722-263377

m. 9451393681

राजेन्द्र योगी

वैदिक योग साधनाश्रम

करमनवीर त्रिमुहानी, सुसुवाहीं, लंका, वाराणसी - 221005

मोबाइल : 9335474250

प्रकाशक :
वैदिक योग साधनाश्रम
करमनवीर त्रिमुहानी, सुसुवाहीं
लंका, वाराणसी - 221005

प्रथम संस्करण 2006

मूल्य : 40/- (चालीस रूपया मात्र)

लेजर टाइप सेटिंग एवं मुद्रण :
प्रिया प्रिन्टिंग वर्क्स
चितईपुर चौराहा, चुनार रोड, कन्दवा
वाराणसी - 221106
फोन : 6520865, मो0 :9336927314

पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

१. रमाकान्त मौर्य, आर्य पुस्तक भण्डार, मधुवन, जनपद-मऊ।
२. पं० लालमणि शर्मा, मंत्री, आर्य समाज, दोहरीघाट, आज़मगढ़।
३. सत्येन्द्र आर्य, मो० : 9839581529, सत्यम कुटीर उद्योग, खोजवाँ, वाराणसी।
४. राजेन्द्र योगी, मो० : 9335474250, वैदिक योग साधनाश्रम, करमनवीर त्रिमुहानी, सुसुवाहीं, लंका, वाराणसी।

भूमिका

कुछ दिनों से उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में प्रचार का अवसर मिला। तव मुझे ज्ञात हुआ कि यहां आर्य समाज के प्रचार की इतिकर्तव्यता केवल पाण्डाल सजाना तथा सामान्य यज्ञ के साथ केवल प्रवचन और भजन में हीं रह गया है। ज्ञान यज्ञ के नाम पर कर्म यज्ञ मे कतराना, इधर का स्वभाव वन गया है।

आज के पर्यावरण की जटिल समस्या का वैज्ञानिक महत्वपूर्ण विकल्प होने पर भी जनता तथा प्रचारकों की रूचि बिल्कुल यज्ञ में नहीं है।

यह कुढ़न तथा दर्द मुझे वहुत परेशान किया। अतः इसका प्रचार और व्याख्यान देना प्रारम्भ कर दिया। पर वेदपाठी और घृत का अभाव और निम्न कोटि की सामाग्री आदि असफलता के कारण बनते रहे, आज भी है। कार्यकर्ता भी इससे उदासीन है। किसी प्रकार १०/१५ वेद यज्ञ करा देता हूँ। पर जो हर समाज से जुटा होना चाहिए वह नहीं के बराबर है।

यही प्रेरणा श्रोत इस पुस्तक का है यह पुस्तक क्या है, बल्कि यज्ञ तथा ज्ञान यज्ञ के समन्वय के प्रवचन हीं पुस्तक बन गये हैं। यज्ञ के महत्व ऋतुकालीन सामग्री, भैषज्य यज्ञ या नस्य रोग चिकित्सा तथा वृष्टि यज्ञ आदि का विवरण है। कितना सत्यासत्य है, यह तो प्रयोग कर्ता हीं बता सकते हैं। इसका मूल उद्देश्य हमारे विचार से चार मुख्य हैं-

१. प्रथम-

बिगड़ता हुआ पर्यावरण जो बढ़ती आबादी विकाश के नाम पर गाड़ियों की होड़, फूंकते डीजल, पेट्रोल, कारखाने के धूवें, जंगलों का काटना, प्रकृति का स्वार्थमय दोहन। पर्यावरण रक्षक जीव जन्तुओं का वध, शहरीकरण तथा मलमूत्र और नालियों की गन्दगी, सड़न आदि भयकंर आदि दैविक आपदाओं के आसार हैं।

२. द्वितीय-

शारीरिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य की समुचित व्यवस्था, जो सरकार की जिम्मेदारी है। जो बिल्कुल न के बराबर है। केवल फाइलों में ही रह गई है। इसका मूल कारण शहरीकरण, औद्योगिकरण, मशीनीकरण है। बेकारी तथा

मानव अकर्मण्यता, रोग वृद्धि, आतंकवाद, स्वार्थपरता, अनैतिकता अनुशासनहीनता जनवृद्धि, उदण्डता, राष्ट्रीय धर्म की उपेक्षा. आध्यात्म हीन, आत्म नियन्त्रणहीन, विवेकहीन निम्न कोटि के समाज का विस्तार होना ही जनवृद्धि के मूल कारण बने हैं तथा घातक हैं।

३. सामाजिक तथा शारीरिक आरोग्यता-

जो रामदेव जी की ख्याति बढ़ी है। कारण, डाक्टरों की भरमार दवा तथा इन्जेक्शन गर्व से ही चल रहा है। अनेक रोगों के उन्मूलन अभियान तथा फसलों पर कीटनाशक जहरीली दवाओं का प्रयोग जो पर्यावरण तथा फसलों पर जीवित पशु पक्षी जीव जन्तु के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। जो पर्यावरण के रक्षक हैं। साथ ही जमीन की उर्वरा शक्ति पर भी उन जहरीली दवाओं का असर तथा फसलों पर भी प्रभाव पड़ रहा है। इस सारे शारीरिक तथा सामाजिक आरोग्यता उन्मूलन जहरीली दवाओं और जीव जन्तु पशुओं की रक्षा का याज्ञिक प्रभावकारी नस्य चिकित्सा, पर्यावरण को ही आरोग्य करने की विधि विश्व विज्ञान में कहीं नही है। और पर्यावरण से ही रोगाणु मर जाय और शुद्ध वायु जल हो, तो फिर डाक्टर और दवा किस के लिए। पर यह कार्य सरकार नहीं कर सकती, उसकी आमदनी और विकास की इजाद नाना प्रकार के रोग और रोगियों के बढ़ने पर निर्भर है।

४. वृष्टि के जलकणों का संतुलन-

यह कार्य बहुत ही गुरूतर है। संसार का जीवन इसी पर निर्भर है। पृथ्वी में गुरूत्वाकर्षण है। जो अपने चारों तरफ वायु की परत लपेटे हुए है। जिससे वृष्टि तथा आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड आदि जीवनी शक्ति जड़ तथा चेतन सृष्टि को मिलती है। सूर्य धरती से कई करोड़ों मील दूर है। उसकी नीली प्रखर किरणें सीधी पृथ्वी पर अगर आवे तो, कैन्सर, अन्धत्व आदि अनेक रोग पैदा हो मनुष्य का रहना दूभर हो जावे। परमात्मा ने उन्हें रोकने के लिए ४० किलोमीटर मोटी परत ओजोन की दी है जिससे छनकर किरणें आती हैं। इसके ऊपर १०० डिग्री सेल्सियस से ४००० डिग्री से. तक तापमान है। जो छनकर धरती पर आने तक ४० डिग्री. से. ५० डिग्री से० तक रह जाता है। जो जीवों के लिए सहायक है।

पृथ्वी से १२ किमी. ऊंचाई तक का वातावरण वृष्टि तथा जीवों के लिए महत्वपूर्ण है। जिसमें ० डिग्री से. से १०० डिग्री से. तक तापमान रहता है। ० डिग्री से० से जल जमने का तथा १०० डिग्री से. वाष्पीकरण का है। पृथ्वी पर वायुमण्डल धूल कड़ों, कल कारखानों, डीजल, पेट्रोल आदि के धूवें आदि से मोटा तथा ऊपर हल्का होता जाता है। सूर्य की किरणें पहले पृथ्वी पर आती हैं और धूल कणों को गर्म करती हैं और फिर परावर्तित हो ऊपर जाती हैं। जो जल कणों को ले जाती हैं और ऊपर वहीं जम कर वादल बनते हैं। जो गर्मी पा वर्षा का कारण बनते हैं। यह परावर्तन के साथ याज्ञिक औषधि कण रोगनाशक और अन्न आदि पुष्टिकारक कणों को बादल के निचले पर्त पर मलार्क को नष्ट करते तथा वर्षा के साथ जल और पर्यावरण को शुद्ध गुणयुक्त वनाते हैं। यह वर्षा चक्र की गुणवत्ता है। अन्तरिक्ष और वायु की गुणवत्ता यज्ञ द्वारा वहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है।

यों तो परमात्मा ने सृष्टि संतुलित बनाया है। जीवों का अपान वनस्पतियों का प्राण है तथा वनस्पतियों का अपान जीवों का प्राण है तथा विषैली गैस के लिए वैसे ही जन्तु तथा वनस्पति भी वनाया है। पर स्वार्थी मानव संतुलन को बिगाड़ कर दुखी है।

इस संतुलन को दीर्घ काल पर्यन्त कायम रखने में यज्ञ की अहम् भूमिका है। यही उद्देश्य इस पुस्तक का है। अगर यज्ञ से जोड़ने में हमें सहायक सिद्ध हो सके तो अवश्य मानव कल्याण तथा पुण्य के भागी हो सकते हैं। सभी जीव जन्तु जड़ चेतन लाभान्वित हो सकते हैं।

वैदिक मंत्रों तथा प्रवचन से, मनः प्रदूषण जो सभी अनर्थ का मूल है और भविष्य के भावी संकट का कारण है, दूर हो सकता है। यज्ञ को श्रद्धापूर्वक विकल्प के रूप में स्वीकार करना होगा। यज्ञ की वैज्ञानिकता परमाणु शोधन, रोग निवारण, प्रदूषण समन, प्रकृति संतुलन, त्रैताप सामक तथा भौतिक सुख शान्ति के कारण रूप में स्वीकार कर, घर-घर पंचमहायज्ञादि, ऋषि परम्परा पर अनुसंधान कर पुण्य का भागी बनना होगा।

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

कृतज्ञता एवं धन्यवाद ज्ञापन

प्रथम उस सर्वशक्तिमान सर्व हृदय प्रेरक सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हूं। जिसकी कृपा ने निराशा में भी कुछ करने की प्रेरणा दी। आगे जैसी उसकी इच्छा।

कुमारी आराधना बी.ए. पुत्री श्री अमरनाथ, देवगांव तथा श्रीवाल मुकुन्द जी आर्य, वाडी राजस्थान ने इस पुस्तक को लिपिबद्ध करने में सहयोग किया तथा श्री राजेन्द्र शास्त्री के सहयोग से छपना सम्भव हुआ। ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज तथा श्री शिववचन प्रसाद वर्मा वलीदपुर ने आर्थिक सहयोग भी बिना कहे किया, उन्हें धन्यवाद देता हूं।

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

विषय अनुक्रमणिका

यज्ञ का महत्व

स्वर्यन्तो ना प्रेक्षन्तः आद्या रोहन्ति रोदसि।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्धासो वितेनिरे।।

।। अथर्ववेद।।

अर्थ- विश्व के आधार स्वरूप यज्ञ का ही विद्वान विस्तार कर विना अपेक्षा तेज का विस्तार कर प्रकाशमय धाम पहुँचते हैं।

ओ३म् सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिम।

ऋ० १/१३३/७

यज्ञकर्ता परोपकारी को परमात्मा बार-बार धन देता है।

यज्ञ एक व्यापक शव्द है। भौतिक यज्ञ तो कल्याणकारक है ही साथ ही साथ उपकारार्थ तथा लोककल्याणार्थ कार्य है। वे सभी यज्ञ ही है। यज्ञ के तीन संसार व तीन प्रकार है जो भोक्ता तथा भोग्य रूप में निहित है।

प्रथम- अन्तरिक्ष संसार जिसमें सत, रज, व तम के क्रियाशील परमाणु (प्रथम इलेक्ट्रान तीव्र संवेगशील, दुसरा प्रोटान व तीसरा न्यूट्रान उदासीन तथा स्थिर) में वृहद होने से संघर्ष द्वारा परागवत सोम के रूप में बराबर श्रवित होता रहता है जिससे औषधि, वनस्पति तथा जीव-जन्तु जीवनी शक्ति प्राप्त करते हैं। इसी क्रम से अन्तरिक्ष की गुणवत्ता कायम है।

दुसरा- शरीरगत संसार जिसकी जीवनी शक्ति अन्तरिक्ष की गुणवत्ता पर ही निर्भर है।

तीसरा- पृथ्वी संसार जिस पर स्थूल रूप से सभी पदार्थ विद्यमान व दृष्टिगत होते हैं।

इसमें आकाशीय संसार मनुष्य तथा अन्य जीवों का संसार आधार आधेय का परस्पर सम्बन्ध रखते हैं। आकाशीय संसार का एक-एक पदार्थ या अणु शरीरस्थ संसार का आधार है। इन तीनों संसारों मे बरावर यज्ञीय कार्य होता

रहता है। जिसकी समता स्वास्थ्यकर व विषमता अनर्थकारक सिद्ध होता है। इसी अनर्थ का नाम आदि दैविक आध्यात्मिक तथा आदि भौतिक दुख है। यज्ञ द्वारा इनके सामंजस्य को स्थापित कर इस त्रय ताप का निवारण तथा विश्व पर्यावरण शोधन अति-वृष्टि, अनावृष्टि, ओले, भूकम्प, चक्रवात महामारी व रोगाणु निवारण का कार्य मनुष्य के कर्त्तव्यान्तर्गत आता है। इन संसारों के सामंजस्य में सर्वाधिक विकृति मनुष्य द्वारा ही होती है अतः इसका प्रायश्चित भी मनुष्य का दायित्व है।

यहाँ आकर यज्ञ एक विज्ञान का रूप धारण करता है जिस पर अनेक शोध तथा प्रयोगों की जरूरत है। परन्तु यह देश का अभाग्य ही है कि इस ओर वैज्ञानिकों का ध्यान ही नही है। ब्रह्माण्ड में सृष्टि काल के सभी पदार्थ प्रलय काल में परिवर्तित होकर परमाणु रूप व अदृश्य रूप में विद्यमान रहते हैं। पदार्थ नष्ट नहीं होते। सृष्टि काल में (सुर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् कल्पयत) सभी पदार्थ बनते हैं किसके लिए? मनुष्य के लिए। भोगा अपवर्गीयम् बढ़ती हुई आबादी से प्रकृति के नियन्त्रण के बाद भी विषमता बढ़ती जाती है। इस विषमता को मिटाने तथा सृष्टि पर्यन्त जीवन यापन के लिए परमात्मा ने यज्ञ का विधान किया है।

सभी प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ, अन्न, पुष्टिकर तथा मिष्ठान आदि के रहते हुए भी यज्ञ के विना पर्यावरण का प्रभावी शोधन नहीं हो सकता है।

अग्नि में संयोंजक विभाजक तथा छेदक भेदक शक्ति निहित है। यह सभी पदार्थ तथा औषधियों को जलाकर परमाणु रूप में परिवर्तित कर देती है। परमाणु उसे कहते हैं जो किसी मकान के छिद्र से आती हुई रोशनी में जो धूल के कण दिखाई देते है वे अणु होते हैं। उनको विचारपुर्वक ६०वाँ टुकड़ा किया जाय तो वह परमाणु में परिवर्तित हो जाता है। उसी को उपनिषद कहता है- "अजामेकं लोहिता शुक्ल कृष्णावहवी प्रजा जायमाना स्वरूपा" इन्ही सत रज तम के परमाणुओं से सृष्टि बनती है पर जो भी सृष्टि वनती है वह संयोजक होती है चाहे वे सुक्ष्म किटाणु हो, चाहे स्थूल मनुष्य, वृक्ष, जानवर, जन्तु आदि सभी संयोजक ही होते हैं। जो यज्ञ हवन के माध्यम से छेदक भेदक क्रिया द्वारा जो अज बनता है वह सब संयोगज

को भेदकर अपनी गुणवत्ता तथा प्रभाव को सबके अन्दर तक पहुँचाता है।

अग्नि का यह गुण होता है कि जिसकी जितनी जरूरत तथा शोषण क्षमता होती है, उतना ही उसे देती है चाहे पर्यावरण में उसकी कितनी ही मात्रा क्यों न हो। वाकी अन्यों के काम आ जाती है। यह क्रिया इस प्रकार होती है जैसे एक लोहे के शोले को लौ (जो कठोर तथा एक प्रकार के कणों के योग से स्थूल बना है) उसे अग्नि में डाल धौंकनी देवे तो अग्नि उसके प्रत्येक अंग में पहुँच कर उसे लाल (अग्नि स्वरूप) कर देती है कोई भी अंग खाली नही रह सकता । उसी प्रकार यह यज्ञ की उर्जा अज रूप में सारे व्यक्ति,जीव, जन्तु, वनस्पति, औषधि को भेंदकर उनमें शारीरिक मानसिक, वौद्धिक गुणवत्ता को बढ़ाती है, तथा रोगाणुओं को नष्ट करती है। रक्षाणुओं को स्वस्थ करती है तथा बड़ी तिव्रता से पर्यावरण के अनेक प्रकार के रोगाणु को जिस प्रकार की औषधि डाली गयी हो नष्ट करते हुए रोगी तक पहुँच जाती है। इस प्रकार यह अन्दर तथा वाह्य दोनो रोगाणुओं को नष्ट करने में सक्षम है।

एलोपैथी में यद्यपि रोगाणुओं को मारने के लिए अत्यन्त तीव्र विषैली दवाएं उपलब्ध हैं पर वे शरीर को बिना हानि पहुचाए रोगाणुओं को मारने में सक्षम नहीं हैं।

यज्ञ में यह बात नही है। यह शरीर को विना हानि पहुचाए रोगाणु को मार सकती है। डा. कुन्दन लाल ने लिखा है कि टी. बी. (क्षय रोग) के कीटाणु पर एक खोल (आवरण) होती है। जिससे दवा जल्द प्रवेश नही कर पाती है।

यज्ञ क्रिया में वह खोल तथा कीटाणु सभी संयोजन है अतः उसमें आसानी से प्रवेश कर मारने में सक्षम होती है। दवाएं देने में कम या अधिक हो सकती है पर यज्ञ द्वारा जिसे जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही मिलती है। अतः रोगों को जड़ से, पर्यावरण से और शरीर से नष्ट करने की यज्ञ से बढ़कर कोई वैज्ञानिक विधा सिद्ध नही हो सकती, प्रत्यक्ष प्रमाण के लिए गुजरात का प्लेग व भोपाल गैस त्रासदी है।

यज्ञ का प्रभाव सिमिलर बायोटिक व एन्टी बायोटिक दोनों प्रकार का होता

है। जहाँ यज्ञ होता है वहाँ उस समय घना प्रभाव होने से यह विरोधी औषधियों द्वारा रोगों का निदान बन जाती है और पदार्थ नष्ट न होने के कारण वही तत्व कुछ काल तथा दूरी पर जाकर सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म हो जाने पर बहुत काल तक होमियोपैथिक से मिलकर सिमिलर बायोटिक आरोग्यता प्रदान करता है।

फ्रेन्च वैज्ञानिक ने निमोनिया के जीवाणु (Bacteria) को मुनक्का तथा किशमिश के हवन से आधे घंटे मे ही नष्ट होते पाये। पर्यावरण शुद्धता में देशी खाँड का विशेष महत्व है, तथा उसके द्वारा खसरा, कालरा व चेचक के रोगाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। उसी प्रकार टी.बी. के लिए गुग्गल का प्रयोग अथर्ववेद मे वर्णित है। "मैने खुद खाँसी, जुकाम व बुखार में हल्दी पाऊडर और शक्कर का तुरन्त प्रभाव देखा है।"

इस प्रकार अगर विशेष गहराई से देखें तो भैषज्य यज्ञ को दवा के साथ जोड़ दिया जाय तो मरीज के लिए शिघ्र लाभदायक सिद्ध होगा। अस्पताल आदि में यज्ञ की ब्यवस्था हो जाये तो वहाँ प्रदूषण नष्ट करने के साथ उसे किटाणु मुक्त तथा आरोग्य प्रदायी बनाया जा सकता है। डा. ताराचन्द (मुम्बई) ने भी अपने यहाँ हवन द्वारा आरोग्यता प्रदान करने में यज्ञ का सहयोग पाया है।

२. औषधि विज्ञान- औषधि की संरचना परमात्मा ने दो आधार पर की है। १. शीत वीर्य औषधि २. उष्ण वीर्य औषधि। इसका हमारे ऋषियों ने आयुर्वेद की हर पुस्तक में निर्णय किया है। अगर रोगी शीत से ग्रस्त है तो उसे ऊष्ण औषधि दी जावे तथा ऊष्णता होने पर शीत वीर्य औषधि दी जावे । वायु न हो तो शीत न ऊष्ण बल्कि जिसकी प्रवलता होती है उसे उदीप्त कर देती है। और यह अनेक रूप में है तथा रोग भी अनेक रूप में है यह औषधि विज्ञान का विषय है।

भारत ६ ऋतुओं का देश है अतः इनके सन्धिकाल में ही विषमता को सहन न करने की क्षमता होने पर रोग होते हैं। उसकी औषधि भी उसी काल में होती है जैसे शीत काल में ऊष्ण वीर्य की औषधि पैदा होती है उसके कारण उसमें वाह्य शीत को सहन करने के लिए बीज रूप में ऊष्णता विद्यमान रहती है। गर्मी के मौसम में शीत वीर्य औषधि होती है जो गर्मी सहन कर सके। वह

ऋतु के सन्धि काल में पकती है, और तब प्रयोग में आ सकती है। अगर इन औषधिओं का सही चयन कर सन्धि काल में हवन कर दिया जाए तो सन्धिकालिक उपद्रव का शमन हो सकता है।

इस विषय पर रघुनन्दन प्रसाद की 'वैदिक सम्पत्ति' में ऋग्वेद का मन्त्र 'शतं वो अम्ब धामानि सहस्त्रमुल वो रूपं" .....है! अम्ब तुम सैकड़ो हजारों रूपों में उगती हो यज्ञ में आओ और सबको आरोग्यता दो। इसमें दूध ादार वृक्षों की छिलकों के साथ समिधाँए भी विशेष लाभकारी होती हैं। सामग्री तेल, घी, दूध, से आवश्यकतानुसार संस्कारित होनी चाहिए अन्यथा अहितकर होती है। अग्नि अच्छी प्रकार से प्रज्वलित होनी चाहिए।

३. उत्तरायण व दक्षिणायन :- ऋषियों का हमारे ऊपर परम उपकार है। उन्होने हर दिशा में वेद को आधार लेकर सूक्ष्म विचार करने का प्रयत्न किया है। वर्ष को सूर्य की गति के आधार पर दो भागों में बाँटा- १. उत्तरायण जब मकर संक्राति के साथ २३ दिसम्बर से दिन क्रमशः बढ़ने तथा सूर्य की रश्मियाँ तीव्र होकर भूमि से नमी व जल का अवशोषण करती हैं जिनके साथ मल-मूत्र, नाली-नाले, मरे जीव-जन्तु आदि शोषित अन्तरिक्ष में पहुँच जल कण का भण्डारण करती है। इसमें समुद्री जलों का भी वाष्पीकरण होता है ये सभी मलार्क रूप में अन्तरिक्ष में निहित रहते हैं। और समय पाकर यही वर्षा के रूप में धरती पर आते है।

अतः इनकी गुणवत्ता तथा स्वच्छता के लिए यज्ञ का बहुत ही महत्व है। यह कार्य हमारी परम्परा में होला यज्ञ या नवसस्येष्ठी यज्ञ से प्रारम्भ होता था। जो वृहद यज्ञ का आयोजन था। गर्मी के इन यज्ञों के क्रमों को वृष्टि यज्ञ कहा गया। जो कि वृष्टि आकर्षक यज्ञ का विधान तथा मंत्र है । पर इस समय का यज्ञ मलार्क शुद्धि का ही कर्म है। अमेरिकन वैज्ञानिकों ने इसी होलां यज्ञ से वृष्टि काल ८५ दिन माना है जिसमें ३० दिन चैत्र मास, ३० दिन वैशाख मास तथा २५दिन ज्येष्ठ मास से मिल ८५ दिन गंगा दशहरा को पूरा होता है। ऋषियों ने आर्द्रा नक्षत्र में विशेष यज्ञ करने से समय से मानसून का आना वृष्टि तथा उत्तम वृष्टि बताया है। गंगा दशहरा से १ माह ३० दिन मानसून आगमन या

सन्धि काल है, इसके बाद पूरा श्रावण मास, भाद्रपद तथा क्वार के दशहरा तक ८५ दिन लगभग वृष्टि काल हैं। इस वृष्टि काल में अनावृष्टि के लिए "करील" की समिधा तथा अतिवृष्टि के लिए सरसों के विशेष स्थान है। इनके साथ शीत और ऊष्ण वीर्य औषधियाँ आवश्यकतानुसार होने चाहिए। इस प्रकार यह एक वैज्ञानिक विधा है। यह खेल या प्रदर्शन नही है।

इस उत्तरायण दक्षिणायन के आधार पर ही प्रेय व श्रेय मार्ग, देव यान व पितृयान तथा शुक्ल यान व कृष्णयान का वर्णन है। अगर मोक्ष में समय का ही महत्व है तो फिर सारे कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म वेद असत्य हो जायेंगे तथा सृष्टि की विविधता जो कर्मफल पर आधारित है,व्यर्थ हो जायेगी । महाभारत में वाण शैया पर से भीष्म पितामह पूछते हैं कि "उत्तरायण सूर्य कब होगा ?" और उत्तरायण में मर कर मोक्ष की कामना करतें हैं। अगर ऐसा हो तो समस्त वैदिक सिद्धान्त निष्प्रयोजन हो जायेगा।

यह उत्तरायण व दक्षिणायन है क्या ? इस पर अपना चिन्तन- उत्तरायण से तात्पर्य त्याग वृत्ति का उदय अथवा वैराग्य जो श्रेय मार्ग के लिए आवश्यक है। दक्षिणायन से ग्रहण वृत्ति का उदय जिसका तात्पर्य आकर्षण ग्रहण रति तथा श्रृगार अर्थात् प्रेय मार्ग है।

जब गर्मी उत्तरायण में क्रमशः बढ़ने लगती है तो सारा वातावरण तपने लगता है, फसलें पक तथा वनस्पति सूख जाती है। स्पर्श का सुख जो है दुख में पर्णित हो जाता है, गर्मी से लू चलने लगती है ऐसा प्रकृति परिवर्तन के कारण होता है अगर यह क्रम लगातार बढ़ते रहे तो निश्चय ही संसार से वैराग्य, जीवन नीरस हो जावे। इसी कारण इसे श्रेयमार्ग तथा संसार से उदासीनता का कारण माना हैं पर संसार परिणामी है। परिवर्तन तथा द्वन्द से ही बना है।

मिथुन राशि के साथ या २३ जून के बाद क्रमशः दिन घटना तथा मानसूनी हवाओं का प्रसार होने से बादल बनने लगते हैं। तथा वातावरण आर्द्र बनने लगता है। इसी से इसे आषाढ़ भी कहते है जो आ- माने 'चारो तरफ़ से' षाढ़ माने 'आर्द्रता से घिरा हों' तत्पश्चात वर्षा का वातावरण और बनस्पतियाँ जमने लगती हैं। निरसता, सरसता में परिवर्तित होने लगती है। पृथ्वी धानी

चादर ओढ़े सजी-धजी श्रृंगारिक सी लगती है। कोयल कूकने, मोर नाचने, पपीहा पी-पी करने, कवि कविता करने, कृषक खेतों में तथा महिलाएं श्रावणी गीत गाने लगती हैं। एक मोहक रति उद्बीपक श्रृंगारिक वातावरण बन जाता है। इसी कारण इसे प्रेरणादायक प्रेय मार्ग भी कहा गया है, जो संसार में बैराग्य के स्थान पर आकर्षण का कारण बन जाता है।

४. चौमासा महिने का महत्वः- इस तथ्य को ऋषियों ने समझा और संसार के कल्याणार्थ चौमासा की व्यवस्था की । आषाढ़ी पूर्णिमा को गुरू पुर्णिमा भी कहते हैं। ऋषि, महात्मा, सन्त, वर्षा से सुरक्षा के लिए जंगल से आवादी में आ जाते थे, और आवादी में ही चौमासा व्यतीत करते थे। उनके आने से एक आध्यात्ममय वातावरण का निर्माण होता था। वेदकथा, सत्संग, हवन, यज्ञ, उपदेश तथा तप आदि का गाँव-गाँव में आयोजन करते हैं। जिस से मनः स्थिति को प्रेममय वातावरण बनाना था। श्रावण का अर्थ ही है श्रवण करना। कथा सत्संग आदि की पूरे १ माह तक पूर्ण चर्चा रहती थी जिसके आगे भाद्रपद माह का अर्थ ही है कि प्रेय से वचकर भद्र देखना, भद्र सुनना भद्र आचरण से युक्त होना। ऐसे वातावरण में पितरों के प्रति श्रद्धा सेवा सत्कार का भाव उत्पन्न होता था। जीवित पितरों की सेवा की जानी चाहिए। मनु कहते है **"अभिवादनं शीलस्य नित्य वृद्धोपसेविनं चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोवलम्"** इसके परिणाम स्वरूप पितृपक्ष पितरों को तृप्त करने वाला, श्रद्धा पूर्वक सेवा करने का काल है। जिससे देवत्व की उत्पत्ति होती है। मनुष्य अपनी १० इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर विजयादशमी मंनाता है। और राम को आदर्श के रूप में मानता है।

इसके बाद कार्तिक कर्मशीलता, मार्गशीर्ष जीवन की उन्नति, माघ अघ से बचने हेतु यज्ञ दान आदि करने पुण्य अर्जित करने, फाल्गुन कृषि व्यापार आदि में उद्योग शीलता, चैत्र में फसलादि का संग्रह, वैशाख कठिन क्रियाशीलता तथा संग्रह का समय हैं। सभी प्रकार की उन्नति शारिरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति की श्रेष्ठता का द्योतक है। इस प्रकार समयानुसार जीवन की सार्थकता हैं।

महर्षि दयानन्द ने सभी कुरीतियों, भ्रान्तियों, रूढ़ियों को मिटाने के साथ ही इस वेद विरूद्ध उत्तरायण दक्षिणायन में मरने से मोक्ष और बन्धन के भ्रम

को भी मरते समय मिटाते गये। महर्षि ने दक्षिणायन सूर्य, अमावस्या, तिथि, कृष्णपक्ष मंगलवार दिन को दीपावली के अवसर पर मर कर यह जता दिया कि मोक्ष के लिए शुभ कार्य, ईश्वर की सच्ची आराधना, सच्चरित्र सदाचार, योग, इन्द्रिय संयम आदि साधन ही सहायक हैं, समय का कोई बन्धन नहीं है।

५. वृष्टि यज्ञ का प्रयोग :- सन् २००३ में वृष्टि यज्ञ का प्रयोग कई वर्ष से सूखे से जूझता हुआ राजस्थान में किया गया। जहाँ पशु कौड़ियो के भाव बिक गये तथा मर गये। गेहूँ के भाव भी चारा नही मिल पाया। इस से प्रेरित होकर एक सन्यासी ने जिला सीकरी के पियराईच में एक वृष्टि यज्ञ का आयोजन किया जो २१ जून से २१ सितम्बर तक चला इसमें व्यय का आँकड़ा ११ लाख रूपये का था। जिसमें १० क्विंटल गोघृत और सामग्री का प्रयोग हुआ। जिसका प्रभाव पूरे उत्तरी भारत की वृष्टि पर पड़ा जो सुवृष्टि रहा। और कीटनाशक दवाएँ भी नाम मात्र के लिए लगी । अन्न की उपज भी अच्छी रही।

राजस्थान में बाजरा तथा लाहा आदि खूब हुए। इस यज्ञ में वहाँ देखने अनेक मन्त्रीगण भी आये थे। फिर भी हमारा अविश्वास वहीं रहा। यह दुर्भाग्य ही कहिए क्योंकि एक जिले को जो अकाल राहत कोष दिया जाता है, उनसे यह खर्च कम ही था। इस कार्य की सरकारी स्तर पर चर्चा तक नही की गई। शोध तो दूर की बात है।

भोपाल गैस त्रासदी के सुरक्षित परिवारों को देखकर अमेरिका तथा जापान ने आश्चर्य किया। अमेरिका ने अग्नि होत्र विश्वविद्यालय स्थापित किया है तथा कीटनाशक दवाओं के स्थान पर यज्ञ का प्रयोग कर रहा है। पर भारत को कोई जरूरत नहीं है।

गंगा दशहरा या मिथुन राशि पर सूर्य की गति लगभग २३ जून से होती है, वृष्टि के प्रारम्भ पर मौसम में आर्द्रता रहने से वृष्टि संधि काल में अनेक वनस्पतियों के साथ कीट-पतंगो तथा शीत से सन्धिकाल जनित अनेक रोगाणु पैदा होते हैं।

इसे दक्षिणायन या प्रेय मार्ग भी कहते हैं।

इसमें अनेक प्रकार के रोग मनुष्यों तथा पशुओं को पैदा होते है। अतः इस काल में भैषज्य यज्ञ का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

७. स्वाहा

स्वाहा का अर्थ :- सुआहेतिवा - कल्याणकारी वाणी बोलना। स्वावागेहती- जैसा ज्ञान हो। वैसा वोलना। स्व प्राहेतिवा - अपने पदार्थ को अपना कहे। स्वा हुतम् - अच्छी प्रकार संस्कारित उपकारार्थ हवन करना। स्वाहा अर्थ सब दिन मिथ्या छोड़कर सत्य ही बोलना। आत्मा की प्रसन्नता भी । य०। के अनुसार।

स्वाहा 'यज्ञ की आत्मा' तथा 'इदन्नमम्' प्राण है। इसके लिए एक कथानक आता है कि जनक सभा में यज्ञकर्ताओं से ऋषि उद्धालक ने प्रश्न किया कि यज्ञ की आत्मा क्या है ? यज्ञ का प्राण क्या है ? और यज्ञ का फल क्या है? यहाँ यज्ञकर्ताओं की असमर्थता की स्थिति में उन्होने स्वयं उत्तर दिया कि यज्ञ की आत्मा स्वाहा तथा प्राण इदन्नमम् एवं फल लोक कल्याण उपकार तथा सुगन्ध है।

अब एक-एक कर विचार करें यजुर्वेद में स्वाहा के चार अर्थ दिये गये है। प्रथम - शुद्ध, सरस, मधुर, सत्य तथा न्यायप्रिय वाणी बोलना जो किसी को दुख देने वाली न हो। दूसरा- अपने पवित्र परिश्रम से न्यायपूर्वक अर्जित धन से यज्ञादि शुभ कर्म करना। तीसरा- त्यागवृत्ति होना अर्थात कम से कम में अपनी आवश्यकता पूर्ति करते हुए अधिकाधिक अपने त्याग उपकार परमार्थ समाज कल्याण में खर्च करना। चौथा- जिस कर्म से निर्भयता, प्रसन्नता तथा आत्मिक शान्ति हो, ऐसा कर्म करना।

७. त्यागपूर्ण जीवन व यश :- इसी प्रकार प्राणी का जीवन आधार प्राण ही है जो भूः स्वरूप परमात्मा की व्यवस्था है। विना त्याग के संसार का कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता। परमात्मा ने सबकुछ परार्थ हीं बनाया, अपने लिए एक कण तक नहीं बनाया। अतः हर प्राणी को सोचना चाहिये कि यह सब वैभव मेरा नहीं अर्थात इदन्नमम्, तभी संसार का व्यवहार चल पायेगा। इसलिए अपरिग्राही होना चाहिए। किसी वस्तु का लोभ नहीं करना चाहिए। मम ही ममता का मूल तथा ममता ही आशक्ति का जन्म देने वाली और आशक्ति ही मोह के

कारण है और मोह ही बन्धन का कारण है। खाने में केवल सुख ही मिल सकता है, पर ख़िलाने पर आनन्द की प्राप्ति होती है। भुखे, गरीब, अकिंचनादि के लिए जो उपकार संस्थाएं चल रही हैं त्याग के ही फल हैं। अन्यथा समाज का विकास संभव नही है। त्याग ही दैवी वृत्ति है और मम ही आसुरी वृत्ति है। इसी स्वार्थ और त्याग को ही देवासुर संग्राम कहते हैं। जिससे मानवता अनेक बार बर्बाद हुई है। चाहे विश्व युद्ध हो या उपनिवेशवाद या कट्टर सम्प्रदायवाद हो। इसने स्वार्थ में आकर असंख्य प्राणियों का नाश किया है।

८. यज्ञ का फल :- प्राणि मात्र को स्वच्छ जल, वायु, विद्युत, औषधि वनस्पति के द्वारा उपकार करना, भयं से मुक्ति देना, विश्व पर्यावरण शोधन करना, सुवृष्टि, सुधान्य तथा आरोग्यता प्रदान करना, आदि यज्ञ का फल ही तो है।

इस प्रकार शरीर में जैसे आत्मा प्राण द्वारा सभी सुखों को भोगता है ठीक उसी प्रकार ब्रम्हाण्ड में यज्ञकर्ता याज्ञिक भावना द्वारा सारे सुखों को प्राप्त कर चारों पुरूषार्थ सिद्ध कर सकता है। यह सृष्टि "भोगापवर्गार्थ दृश्यम्" भोक्ता एवं भोग्य का सामंजस्य यज्ञ द्वारा ही संभव है।

९. यज्ञ की व्यापकता :- यजुर्वेद में यज्ञ की व्यापकता का वर्णन करते हुए "यज्ञवैविष्णु" तथा "यज्ञवै भुवनस्य नाभी" आया है। पिण्ड में जैसे सभी नस-नाड़ियों का केन्द्र नाभि है ठीक उसी प्रकार ब्रम्हाण्ड की नाभि यज्ञ है। शरीर में नाभि दायें टलें तो कब्ज और बाँये टले तो दस्त रोग हो जाता है। इसे ठीक कर ही आरोग्यता मिल सकती है। इसको जानने के लिए दोनो हथेली को सीध में मिलाने में कनिष्का की तीन रेखा और हथेली की एक रेखा समान हो तो नाल ठीक है । बिषम हो तो अंगुलियों को झटका दे ये ठीक हो सकते है। इसी प्रकार ब्रम्हाण्ड के रोग ग्रस्त या प्रदूषित होने पर यज्ञ करके ठीक कर सकते हैं।

इसे विस्तार से समझाने के लिए " शतपथ" ब्राम्हण का एक कथानक है। जिसे पौराणिकों ने वामनावतार की कथा बना डाला जो विल्कुल अप्रासंगिक है। वैदिक परिवेष में यज्ञ की ब्यापकता इस कथानक से समझाई गयी है।

प्रजापति की दो पत्नियां दिति और अदिति जिनसे देवों और असुरों की

उत्पत्ति हुई है। इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि दो प्रकार की है तमोगुण प्रधान असुर तथा सतोगुण प्रधान देवता। दोनो को देखा जाए तो दोनो गुणवाचक है। ये रजोगुण से उत्पन्न कर्म तथा भोग उभय योनि मनुष्य है उसी के लिए शुभाशुभ चिन्तन है। देवता संसारकल्याण को विचारने लगे तब तक असुर इस संसार का विभाजन करने लगे। देवताओं को ज्ञात हुआ तो वे दुराग्रही हठी असुरों से समस्या के समाधान का विचार किया। और "यज्ञवैवविष्णु" के माध्यम से समाधान खोजा देवताओं ने हिस्सा मांगा जब हिस्सा देने से असुरों ने इन्कार किया तो फिर यज्ञ का सहारा लिया इसके लिए वे तैयार हो गये तब देवताओं ने यहाँ यज्ञ वेदी जो लक्षाहुति यज्ञ के लिए आवश्यक थी। ५२ अंगुल लम्वी उतनी ही चौड़ी तथा उतनी ही गहरी तैयार की इसके बाद मण्डप बनाये, मन्त्रों से सजाया तब देवताओं ने आग्रह किया हमारा और आपका बँटवारा हो गया केवल एक बात बाकी है कि जहाँ तक विष्णु का विस्तार(गंध) जाय वह खाली कर देना, बाकी सब तेरा है। इस रहस्य को असुर नहीं समझ पाये और स्वीकार कर लिया। यज्ञ प्रारम्भ हो गया जब उसकी गंध तीनो लोक में फैल गयी तो वह स्थान असुरों को खाली करना पड़ा। इससे उनका बँटा हिस्सा रसातल को चला गया। बलि राजा नहीं था। बल्कि "बलि" भाग को कहते हैं। भूत यज्ञ में बलि वैश्य यज्ञ या यज्ञ में जो भाग दिया जाता है उसे बलि कहते हैं। इस प्रकार असुरों की पराजय और देवताओं की विजय तथा मनुष्यों का कल्याण हुआ।

१०. पदार्थ का विस्तार :- यह यज्ञ की विशेषता है जो सामग्री अग्नि में डाली जाती है वह नष्ट न होकर परमाणुओं में पर्णित हो जाती है और वातावरण के दूषित परमाणुओं में मिलकर उनके दोषों को दूर करने में सक्षम होती है या प्रभावी होती है जो प्राणियों के सुख-शान्ति अरोग्यता तथा वनस्पति, औषधि, अन्न, फल जलवायु के गुणवत्ता को बढ़ाती हैं। यह प्रभाव व्यापक होने से यज्ञ को विष्णु कहा गया है।

११. यज्ञ केन्द्र :- "यज्ञवै विश्वस्य भुवनस्य नाभि" इससे ताप्तर्य है कि गोल वस्तु पर जहाँ भीं अंगुली रखी जाती है वहीं उसकी नाभि है। अतः पृथ्वी पर जहाँ यज्ञ वेदी हो वहीं उसकी नाभि है। "अग्नि वै देवानां मुखं" अग्नि में डाला

हुआ हव्य देवताओं का भोजन बन जाता है। इसे सुर्य की किरणों तथा वायु के माध्यम से अग्नि बाट देती है। न कम न अधिक, न मित्र न शत्रु सबको आवश्यकतानुसार यथा योग्य बाँट देती, तथा सुख का कारण होती है। यह अग्नि की विशेषता है। साथ ही कोई स्थान ऐसा नही होता जिसका यह भेदन या छेदन न कर सके। यज्ञ त्रिलोक तथा त्रिकाल में त्रय ताप निवारक , रोगाणु नाशक, शरीर पोषक, वायु जल शोधक, वनस्पति अन्न और औषधि को गुणवान वनाने वाली तथा पर्यावरण की शुद्धिकारक है। इतने उपकार तथा कल्याण के कारण ही"यज्ञ वै श्रेष्ठतमम् कर्म" है।

१२. मंत्र विचार :- मंत्र एक विचार है तथा सार्थक उद्देश्य से प्रेरित है। इन्हें समझने में शब्द प्रमाण वेद तथा अनुमान प्रमाण ही सम्भव है। आध्यात्मिक प्रक्रिया में आचमन के मंत्र में हमारे हाथ में जल ही होता है, परन्तु मंत्र शंनोदेवीरभिष्टय तथा यज्ञ के आचमन मंत्र में 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' आदि मंत्रों का उपयोग होता है। इसका कारण क्या हो सकता है? इन पर विचार करने पर मंत्रों का उद्देश्य ही कारण सिद्ध होता है।

जब हम सन्ध्या करते हैं तो हमारा उद्देश्य आन्तरिक शान्ति प्राप्त करना होता है। जल का गुण शीतलता होता है, जो आन्तरिक शान्ति को इंगित करता है तथा यह शान्ति आत्मा व परमात्मा के संयोग पर ही मिल सकती है जो जीव के लिए अभीष्ट है। पर यज्ञ का उद्देश्य पर्यावरण सुख शान्ति के आधार को ठीक करना है। यह बाह्य वृत्ति है। अतः औषधियों के अग्नि में जलने पर हम कहते हैं जल गया। वह कौन सा जल ? और कहां गया? वह जल औषधियों का सार है। जो अग्नि से निकल कर पूरे ब्रह्माण्ड को अमृतमय बना दिया। वह पूर्ण रूप से प्राणियों को आच्छादित कर उनका ओढ़न व विस्तर बन गया और वही जल वास्तव में यश कीर्ति को बढ़ाने वाला श्रीमान सौभाग्य को देने वाला, भौतिक सुखों का कारण अमृत युक्त जीवन प्रदान कर सकता है। और शुभ कर्म ही अमृत पद में भी सहायक है। अतः परोक्ष प्रत्यक्ष दोनों रूपों में यज्ञ कल्याणकारक है।

आचमन :- आचमन के बाद इन्द्रिय स्पर्श से हम जीवन यात्रा में इन्द्रियों की

पवित्रता के प्रति पूर्ण सचेष्ट हों क्योंकि यही कर्म है। जिनसे कार्यजगत बनता है।

यज्ञोपवीत यज्ञ वस्त्र है, यह वस्त्र तीन रूप से यज्ञमान को मर्यादित करता है, पितरों के प्रति कर्तव्य, देवता तथा देवपुरूषों के प्रति कर्तव्य, आचार्य ऋषियों तथा महापुरूषों के प्रति कर्तव्य। यह तीनों कर्तव्य हीं जीवन के प्रति कर्तव्यता के पथ प्रदर्शक हैं।

कर्तव्य पथ के ज्ञान के लिए ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को जानना सामंजस्य के लिए परम आवश्यक है। जो मेधा बुद्धि दुरितानि नाशक, आत्मशक्तिदाता सुपथदाता, गुरूओं का गुरू, सम्पूर्ण सुखों का प्रदाता परम याज्ञिक है उसे जानने तथा आदेश पालन से ही जीव का कल्याण तथा शान्ति मिल सकती है।

तीनों लोकों के त्रयताप नाशक यज्ञ हेतु यज्ञमान, यज्ञवेदी पर अग्नि स्थापन कर अपनी उद्बुद्ध इच्छा पूर्ति हेतु यजमान व विद्वत जन प्रज्वलित अग्नि से अपेक्षा करते हैं। तथा समिधादान कर पृथ्वी अन्तरिक्ष तथा द्यौ लोक तक विकसित करते हैं। अन्तरिक्ष के दो मंत्र, दो तत्व अग्नि और वायु के द्योतक हैं तथा पति-पत्नि, गृहस्थ का भी द्योतक हैं।

समिधा :- समिधादान पश्चात पंच घृताहुति प्रदान कर अग्नि को विशेष प्रज्वलित करते हैं, जिससे हव्य जलाने की क्षमता हो जाए। साथ ही यह मंत्र पंच इच्छाओं को भी व्यक्त करता है। प्रथम- परमात्मा के आदेश का पालन कर आत्म उन्नति, दूसरा- सुप्रजा के लिए कामना करना। यह केवल यज्ञ करने से ही नहीं बल्कि संगति मिलाने तथा संस्कार से सम्भव है, इसके लिए सुमाता, सुपिता, सुपुत्र, सुभ्राता और सुबन्धु ये पांचजन्य कहलाते हैं। ऐसे संस्कार से ही सुप्रजा सम्भव है। तीसरी आवश्यकता पशु, सुदुहा गायें सुखदायक पशु होवें। वेद विद्या ज्ञाता तेजस्वी बुद्धिमान व्यापक उपकारी हो। साथ ही अन्न धन धान्य घृत दुग्ध आदि से परिपूर्ण उपभोग करने का सौभाग्य प्राप्त हो। यह सार्थक जीवन की परिकल्पना या इच्छा है। इसे स्वर्ग भी कह सकते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत, यजमान का उद्देश्य भी इस संसार का उपकार यज्ञ का मुख्य उद्देश्य है।

प्रचेसन :- जल प्रचेसन के साथ परम ज्ञानवान हितकारी उस अखण्ड प्रभु

यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए उत्तम स्वभाव विद्या, मधुर वाणी अर्थात नम्रता प्रदान करे।

आघार :- आघाराहुति उत्तर, दक्षिण भागाहुति से तात्पर्य गृहस्थी का आधार उत्तर अग्नि तत्व पुरूष तथा दक्षिण सोम तत्व पत्नी का तथा दोनों संयुक्त भाग का फल ऐश्वर्यवान या इन्द्रियजयी सन्तान (प्रजा) का योग बनता है। सामान्य अर्थ में प्रकाशवान, शान्तिस्वरूप, ऐश्वर्यवान प्रजापालक जगदीश्वर के लिए यह आहुति है, अपने लिए नहीं।

प्रातः - प्रातःकालीन आहुति प्रथम कर्तव्य चराचर जगत का स्वामी सूर्यादि को प्रकाशित करने तथा वेदवाणी द्वारा सब विद्याओं का ज्ञान कराने वाला, जिस परमेश्वर की ज्योति से सारा जग जगमगा रहा है उसके उपकार और अनुग्रह के लिए आहुति दें। जो परमात्मा जग को उत्पन्न, पालन तथा व्यवस्था देने वाला है। वह यज्ञकर्ता के सब व्यवहार को सिद्ध करे। सूर्य के अभाव में दूसरा प्रकाशक अग्नि है। परमात्मा भी अग्नि स्वरूप है, इस अग्नि से हम भौतिक सुखों के लिए हवन कर जलवायु को शुद्ध कर बुद्धि, आरोग्यता बढ़ा लोक कल्याण करें।

मौन आहुति विचार :- मौन आहुति से तात्पर्य आत्मनिरीक्षण, पूर्वापर का विचार कर आगे बढ़े। परमात्मा अग्नि की भाँति सर्वत्र व्याप्त होकर यज्ञ ही कर रहा है। अतः हम भी उसका अनुकरण कर लोक कल्याण करें। हम मेधावी सदगुणों से युक्त हों और सुपथगामी हों इसके लिए सदबुद्धि की प्रेरणा परमात्मा से करे। इसके साथ पवित्र करने वाले तथा मांगलिक यन्त्रों के साथ इष्ट कार्य विचार व्यवहार की कामना करें। याचना से बार-बार वैसे ही विचारों के संस्कार बनते हैं। यह पंच महायज्ञों का प्रभाव होता है। संस्कार से ही सुख दुख व पुनर्जन्म में भी सहायक होती है। कुसंस्कारों से ही इन्द्रिय दोष आने से जीव अविद्या से घिर जाता है। जिससे निकलना बहुत कठिन होता है। ऋषियों ने 'संस्कार दोषाश्च इन्द्रिय दोषाश्च अविद्या' इसी आधार पर कहा है। अतः जीवन में दैनिक परिचर्या लक्ष तथा दर्शन अवश्य होने चाहिए। इसका पालन ही तपस्या है।

१२ गायत्री विचार :- गायत्री मंत्र जो गाने वाले को तारे 'गात्रं त्रायते

गायत्री' जो शरीर रक्षा करे। गय प्राण को भी कहते हैं। जो प्राणों के माध्यम से सुख तथा शान्ति प्रदान करे।

लेकिन गायत्री पर विचार करने से ज्ञात होता है कि जो कुछ महत्व है वह एकाक्षरी गायत्री प्रणव 'ओ३म' का ही है। यह आरक्षणे धातु से वना है जो सब ओर से और सब प्रकार से जीव की रक्षा करे। "तस्य वाचक प्रणवः" महर्षि पातन्जलि/ म.मनु 'जन्मना शूद्रो जायते संस्कारात द्विज उच्यते' जन्म से सभी शूद्र हैं संस्कार से उनका दूसरा जन्म होता है और गुरूमंत्र गायत्री ही ब्राहमण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्रहमचारी के हैं। जबकि पातन्जलि कहते हैं यो० ३६ 'स एषपूर्वषामपि गुरू कालेनानवच्छेदात' काल के द्वारा नष्ट न होने के कारण वह (ईश्वर) पूर्व गुरूओं ऋषि महर्षियो का भी गुरू है। ईश्वर प्रदत्त वेद ज्ञान को जानकर ही कोई गुरू, ऋषि, महर्षि, आचार्य, अध्यापक, उपदेशक आदि बना है। आगे जो भी गुरू होंगे उनका गुरू भी वही ईश्वर होगा क्योंकि काल से वह नष्ट नहीं होता वह अमर है। सभी कालों में वही गुरू होगा।

ओ३म का महत्व-

पातंजलि ने ओ३म की व्याख्या इस प्रकार नव रूपों में अ ऊ म् के आधार पर किया है। अगर 'अ' देखे तो ६३ वर्णों में व्यापक रूप से जुड़े हैं। कोई वर्ण बिना अ के नहीं, उसी प्रकार सृष्टि की कोई वस्तु ईश्वर से व्याप्य व्यापक आधार-आधेय रूप में निहित हैं। अ से तात्पर्य जो इतना विराट हो जिसमें सब ब्रहमाण्ड निह्ति हो। अग्नि जो सर्वत्र अग्रणी पहुंचा हुआ ज्ञानस्वरूप है। विश्वादि जो सब वसुओं में वसा हुआ हो। परमात्मा की सृष्टि अन्दर से होती है। वह हर परमाणु के अन्दर निहित बसा हुआ है और उसे प्रेरित कर रहा है। और मनुष्य की सृष्टि बाहर से होती है। परमात्मा ऋत का नियन्ता है पर मनुष्य सत्य का उपभोक्ता है।

'उ' से तात्पर्य हिरण्यगर्भ-'हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीद्.......' जितनी प्रकाशित वस्तु है वह उसी का बनाया तथा उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। वायु से मतलब सबको गति प्रदान करने वाला वंही परमात्मा है वह तेजस्वियों का तेज वही है। 'तेजोऽसि तेजोमयि धेयिः।'

'म' से ईश्वर सर्वभौतिक ऐश्वर्यों का निर्माता वही है। भोक्ता केवल जीव है। आदित्य उसका आदि और इति नहीं है। अमर है। उसमें लय होने वाले तथा जन्मने वाले जीव या सृष्टि है।

प्राज्ञ :- वह इतना ज्ञानवान है कि उसने कोई वस्तु या अंग बेकार नहीं बनाया। एक तिनका भी मूल्यवान तथा उपयुक्त है।

इस प्रकार अ- विराट अग्नि- विश्वादि, उ- हिरण्यगर्भ वायु तेजस, म्- ईश्वर, आदित्य प्राज्ञ। इन नवरूपों में सारा ब्रहमाण्ड आ जाता है। इससे परे कुछ नही है। इस परमात्मा का नाम ओ३म् है। जो एकाक्षरी गायत्री भी है। ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियोयोनः प्रचोदयात्।

१३. ओ३म एकाक्षरी गायत्री :- अब अगर इस मंत्र में तत् सविता के स्थान पर ओ३म् के लिये किया जाय, क्योंकि सविता भी उसी उत्पति पालन कल्याण कारक ओ३म् के लिये ही है। सबके मूल में तथा गुरू वाचक नामों के मूल में ओ३म् ही है, जो पातन्जलि द्वारा व्याख्या की गई है। अर्थात् तत् ओ३म् मूल के लिए मान लें तो वहीं ओ३म् भूः प्राणन क्रिया करने वाला वायु। वही भुवः सुखो का दाता ईश्वर, वही आनन्द स्वरूप आनन्द देने वाला य व्याहति युक्त है और तत् वही ओ३म् सकल जगत का उत्पादक तत् (वही) वरण करने योग्य वहीं देने वाला। उसी के भर्ग विशुद्ध तेज को धारण करें, वही हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग पर प्रेरित करे। अतः व्याहति मंत्र द्वारा उसी ओ३म् की विशेषता का ही गुण गान है। ओ३म् विशेष्य तथा सब उसके विशेषण हो गये।

ओ३म का कोई रूप नहीं है फिर ये गायत्री माता की मूर्ति पूजा कहां से आई यह न समझने की एक भूल ही हो सकती है। जिससे वैदिक सिद्धान्त दोष युक्त होता है। और 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' यस्य नाम हमत्‌यश'....पर आधारित सब सिद्धान्त और सब दयानन्द का परिश्रम ही व्यर्थ हो जायेगा। अतः इस हठ दुराग्रह युक्त मान्यता वालों को मूर्तिपूजा अवश्य छोड़ देना चाहिए।

सच्चे सच्चिदानन्द प्रभु के आनन्द से आनन्दित होना चाहिए जो ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा,

अनन्त, निर्विकार, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।

प्रणव :- ओ३म को प्रणव क्यों कहते हैं अगर विचार करें तो २४ घंटे में २१५०० बार श्वास प्रश्वास चलता है अगर व्यक्ति 'ध्यानं निर्विवयंमनः' अर्थात् रागद्वेष, धर्माधर्म, पाप-पुण्य, न्याय, अन्याय, झूठ, सत्य सबसे द्वन्दातीत हो, अन्तर्निहित हो, विचार करे तो भूःप्राण प्रदाता उस परमात्मा का ही श्वसन से जाप हो रहा है। वह ओ३म ही है। इसी को अजपा कहते है। जो स्वतः होता रहता है। इस सहज जाप से हमने अनेक संप्रदाय, देवी देवता से जुड़ कर वंचित हो चुके हैं। नहीं तो सबका एक ही परमात्मा और वह ओ३म ही है।

१४. समिधा तथा आश्रम व्यवस्था :- समिधा तीन मंत्र चार है। आश्रम चार है। पर याज्ञिक तीन ही आश्रम है। ब्रहमचर्याश्रम तथा सन्यासाश्रम चल आश्रम है। इनकी कार्य सिद्धि बिना चले संभव नहीं। गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम अचल आश्रम हैं। इनकी सिद्धि स्थिर बुद्धि गति से ही संभव है। आठ अंगुल का समिधा जीवन की प्रथम यज्ञ ब्रहम यज्ञ है जो अष्टांग योग यज्ञ का नियन्त्रण या आत्मोन्नति ही है, जो भौतिक यज्ञ के लिए शिवकर सिद्ध होगी। यद्यपि यज्ञ भय ताप नाशक तथा तीनों लोकों का द्योतक है। दूसरी समिधा दो मंत्र क्योंकि अन्तरिक्ष में दो तत्व कार्यरत है। वायु और विद्युत। इसी प्रकार अनुमानतः प्रथम समिधा ब्रहमचारी की। क्योंकि वह समिधपाणि ही हो ज्ञान दीप्ति के लिए गुरू के पास जाता है। समिधा उस की जिज्ञासा ज्ञान पिपासा का द्योतक है। इस प्रकार गुरू शिष्य का आशय जान याज्ञिक बना सावित्री मंत्र दे द्विजन्म के लिए अपने गर्भ (गुरूकुल) में लेकर उसके पूर्वार्जित संस्कारों के आधार पर उसकी शिक्षा को आगे बढ़ाता है। ब्रहमचारी होता है अकेला, गुरू हमेशा शिष्य की, तलाश में रहता है। सुयोग्य शिष्य मिलना बहुत कठिन है। इसी कारण तो विरजानन्द ने अपनी कुटिया बन्द कर रखी थी। दयानन्द के दस्तक देने पर आवाज आयी कौन? दयानन्द का उत्तर 'यही जानने आया हूं, गुरूकृत कृत्य हो गया। दरवाजा क्या खुला, भारत का भाग्य खुल गया। गुरू की अभिलाषा पूर्ण हुई। यह है गुरू और योग्य शिष्य म० दयानन्द। ब्रहमचारी का उद्देश्य जैसे काष्ठ में अग्नि निहित है उसी प्रकार ब्रहमचारी में ज्ञान की प्रतिभा निहित है।

उसे योग्य गुरू प्रदीप्त कर देता है। ब्रह्मचारी का उद्देश्य अपने अन्दर की शारीरिक आत्मिक और बौद्धिक प्रतिभा को देदिप्यमान करना और समाजोपकारक याज्ञिक बनना है।

दूसरी समिधा अन्तरिक्ष के अतिरिक्त देखें तो गृहस्थ धर्म की व्याख्या करती है। समिधा १ मंत्र दो, उसी प्रकार दम्पत्ति विचार दो, लक्ष्य एक होना चाहिए। ब्रह्मचारी विवाह कर सृष्टि क्रम के लिए सोलह संस्कारों तथा पंच महायज्ञों से गृहस्थाश्रम धर्म के आदर्शों को सुभोभित करे। इसमें (यज्ञ में) पत्नि को दाहिना स्थान दिया गया है। आघाराहुति में प्रथम अग्नि स्वरूप पुरूष और द्वितीय सोम स्वरूपा पत्नि की आहुति देता है। अग्नि और सोम से सुप्रजा की कामना की गयी और प्रजा भी ऐश्वर्यमान और इन्द्रियजयी हो फिर पंचाहुति के माध्यम से आत्मोन्नति सुप्रजा, सुपशु, धन धान्य और उसे भोगने का सौभाग्य गृहस्थाश्रम का उद्देश्य है।

गृहस्थाश्रम से ही ब्रहमचारी का जन्म, पालन पोषण संस्कार बनते हैं। वानप्रस्थाश्रम पलता है। सन्यासी को भिक्षा मिलती है। इसकी उन्नति से राष्ट्र की सम्पन्नता तथा प्रगति निर्भर है। इस प्रकार यह सबसे जेष्ठ और श्रेष्ट आश्रम है। अतः यह वेदानुकूल होकर चारों पुरूषार्थ को सिद्ध करने में सफल हो सकता है।

आश्रम व्यवस्था :- व्यवस्था की दृष्टि से सभी आश्रम श्रेष्ठ है। ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्याश्रम श्रेष्ठ है। अर्थ तथा भरण के लिए गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। तप के लिए वानप्रस्थाश्रम श्रेष्ठ है। मुक्ति के लिए सन्यासाश्रम श्रेष्ठ है। गृहस्थाश्रम ५० वर्ष परयन्त पुत्र को पुत्र (पौत्र) होने के साथ गृह त्याग कर, पुनः आत्मनिष्ट हो अकेले वन को प्रस्थान करें अकेले हों तो उत्तम, न हो सके तो पत्नि को भी वानप्रस्थ दे सकते हैं। पर गृहस्थ धर्म का त्याग कर वानप्रस्थ की मर्यादा का पालन करें। आत्म चिंतन सत्य शास्त्रों का अध्ययन, इन्द्रिय संयम तथा द्वन्दातीत हो तपोमय जीवन व्यतीत करे। ईश्वर में श्रद्धा भक्ति सर्वरक्षक की कर्मानुसार न्याय व्यवस्था को देखना। सुख दुख को उसकी कृपा समझकर निर्विकार भाव से राग द्वेष से परे, वन में कुटिया बना यज्ञ करते, शिक्षा का कार्य करते जीवन

व्यतीत करना। जीवन में शम दम उपरति तीतिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान को अच्छी प्रकार से जीवन में आचरित कर मुमुक्षत्वः के तरफ बढ़े।

१६. मुमुक्षु

१. शम :- शान्ति के लिए समता लाना, सुखी से मित्रता, दुखी पर दया, धार्मिक परोपकारी को देख प्रसन्नता और पापियों से उदासीन रहना, शान्ति का पथ है। संसार भले बुरे से बना है। भद्रता का ध्यान देना तथा अभद्रता की उपेक्षा करनी चाहिए। हमेशा मन में शिव संकल्प ही धारण करना चाहिए। 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' मन की तरंगों का जीवन से बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। आज समाज में, परिवार में, राष्ट्र में, हर चौराहे पर, मन का ही फसाद है। एक उपयुक्त दृष्टान्त इसमें है।

एक राजा मंत्री के साथ नित्य टहलने जाया करता था। रास्ते में एक लकड़ी बेचने वाले की दुकान थी। राजा जब उसे देखे तो उसे मरवा देने का भाव उत्पन्न हो। इसका कारण वह समझ न पाये। राजा की प्रजा सन्तान होती है उसके कल्याण की भावना करनी चाहिए। पर ऐसा क्यों हो रहा है? मंत्री से इस बात को कहा। मंत्री बुद्धिमान था। वह दूसरे वेश में लकड़हारे से मिला और राजा के टहलने जाते समय दिखा कर कहा, ' यह राजा बहुत ही दुष्ट है, तुम्हें मारने की सोचता है, इतना कहना था कि लकड़हारा बैठ गया और कहने लगा, इसका कारण वह नहीं है इसका कारण मैं स्वयं हूँ। मंत्री ने पूछा कैसे? उसने उत्तर दिया, मैंने चन्दन की लकड़ी का व्यापार किया सारी पूंजी फंसा दी। पर वह बिकी नहीं। किसी प्रकार बच्चों की परवरिश करता हूँ। मंत्री बोला, फिर? लकड़हारा बोला, जब मैं राजा को देखता हूँ तो सोचता हूँ कि वह कब मरे और लकड़ी बिके। मंत्री, क्यों? लकड़हारा,-चन्दन की लकड़ी से तो इसी (राजा) की चिता बन सकती है।

मंत्री समझ गया और राजकार्य दिखा उसकी सब लकड़ी खरीद ली। फिर क्या था? लकड़हारे ने राजा का माला से सम्मान किया और दोनों के भाव बदल गये। यह है मन की तरंग, इससे कितने परिवारों में सम्बन्ध नष्ट हो रहा है। अतः हमेशा मन में शिव संकल्प ही धारण करना चाहिए।

२. दम :- इसके तीन रूप हैं। इन्द्रिय संयम, इन्द्रिय दमन और इन्द्रिय निग्रह। ब्रस्मचारी के लिए इन्द्रिय संयम ही जीवन है। ब्रहमचारी का जीवन भी संयमित होना चाहिए। संयम ही ब्रहमचारी का तप है। तथा यम नियम का संयम पूर्वक पालन करना चाहिए।

गृहस्थाश्रमी को इन्द्रिय दमन करना आवश्यक है। उसे हमेशा विवेक पूर्वक इनका उपयोग करना तथा सामाजिक मर्यादाओं का हमेशा ध्यान रखना परम आवश्यक है।

वानप्रस्थी को इन्द्रिय निग्रह को योग साधन द्वारा करना चाहिए। उसे तप द्वारा तथा विचार पूर्वक इन्द्रियों का कार्य उसके कारण में लय हो जाना चाहिए। जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं। इसमें संस्कार मात्र रह जाते हैं। द्रष्टा दृश्य सम्बन्ध ा का न रहना। यहां से संम्प्रज्ञात समाधि का भी उदय होता है।

सन्यासी के लिए जब इन्द्रियों के संस्कार ही संस्मरण में रह जाते हैं लेकिन वे प्रभावी नहीं होते। तब वह अपर, वैराग्य द्वारा संम्प्रज्ञान समाधि और प्रत्याहार को समझ गुणातीत होने का प्रयत्न करता है। और विवेक ख्याति द्वारा गुणातीत होकर पर वैराग्य में पहुंच अंसम्प्रज्ञात समाधि का सुख पाता और उसे ऋतंम्भरा प्रज्ञा द्वारा महत ज्ञान की प्रतीति होती है, और यहीं आकर वह समाधि से समाधान पाने लगता है तथा परिव्राट हो लोक कल्याण में लग जाता है। यहीं आश्रम व्यवस्था की सार्थकता है। जो कि कुछ अप्रासंगिक भी है पर समझने के दृष्टि से जो आवश्यक है वह लिख दिया गया है।

३. उपरंति :- जब सारे भौतिक पदार्थों तथा सभी सम्बन्धों के तथ्य को यथवत समझ उनके आकर्षण तथा लगाव से उदासीन हो जाते हैं, उनके प्रभाव दुखी सुखी नही कर पाते। साधक को दृष्टा दृश्य के सम्बन्ध का यथावत ज्ञान तथा उसकी निःसरिता ज्ञात हो जाती है। जड़ चेतन का सम्बन्ध केवल एक विडम्बना मात्र है। रथी (रईश) सईश बन कर डोल रहा है। अपने लक्ष्य तथा साध्य को छोड़ कौड़ी के पीछे दौड़ रहा है। प्रकृति साध्य नहीं केवल साधन है। इसके माध्यम से केवल संसार सागर पार किया जा सकता है। इसके सिवाय कुछ नहीं। जब इस प्रकार की प्रतीति जीव को होने लगती है तो जो प्रिय थे वही अप्रिय, जो साधक

थे वही वाधक प्रतीत होने लगते हैं। संसार जो सुहावना था वही भय का कारण बनता जाता है। अन्तर चिन्तन बढ़ जाने से अपने से भी भय लगने लगता है। शरीर भार बनता जाता है। तथा सभी व्यक्ति शारीरिक मानसिक व बौद्धिक रोगों से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। संसार में कोई सरसता नहीं रह जाती। वह मुमुक्ष उपरति को समझ संसार से मुड़ने लगता है।

४. तितिक्षा :- संसार द्वन्द से वना है। इस प्रकार एक दूसरे का प्रतिकार वरावर होता रहता है। मुमुक्ष को राग द्वेष, सुख दुख, सर्दी गरमी, मान अपमान, भय शोक आदि से परे निर्द्वन्द हो अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ना चाहिए। यह तभी संभव है जब उसे वैदिक कर्म सिद्धान्त तथा आत्मज्ञता का आभास हो जाए। 'मातृवत पर दारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत, आत्मवत सर्वभूतेषु यह पश्यति सः पण्डितः' सुकरात के सामने से एक नवयुवक अकड़ता हुआ जा रहा था और वह उसे देख उसकी अज्ञानता पर तरस खा रहा था। तितिक्षा के अभाव में सारा संसार ही क्षोभ और संघर्षमय दिखता है। अगर कर्म सिद्धान्त को समझता है तो हर दुख सुख का समाधान उसे अपने कर्मों से ही मिल जाता है चाहे वह शत्रु हो या मित्र दोनों का कारण ऋणानुबन्ध हीं दिखता है। अतः वह हर्ष विषाद से परे हो ईश्वर कृपा को ही धन्यवाद देता है।

काशी शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ, उसे जानने के लिए एक ब्राह्मण रात्रि को उस बाग में गया, जहां स्वामी जी रहते थे। वे उसी प्रसन्न मुद्रा में टहल रहे थे। वह सोचता था ऋषि कुछ कहेंगे, बहुत देर तक बातें करता रहा पर ऋषि ने कोई चर्चा नही चलाई, न कोई दुख की सांस ली, यह देख वह आश्चर्य में डूब गया। ऐसे ही रानाडे जेल में थे उस समय गीता पर भाष्य लिख रहे थे उनकी पत्नि के मरने का तार आया। जेलर उनसे प्रभावित था वह तार अपने हाथ से देने आया जिससे दुखी होने पर सांत्वना देगा। पर हुआ एकदम उल्टा। पूछा तार पढ़ा। हां पढ़ा। पढ़ कर एक तरफ रख दिया, भाष्य लिखने लगें। जेलर को बहुत आश्चर्य हुआ पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि भारत माता की अवदशा पर इतने आंसू गिर चुके हैं कि अब आखों में आंसू नहीं है।

बात जो कुछ भी हो वास्तविकता यह है कि जब मनुष्य जीवन के लक्ष्य चाहे जो हो पहचानने और जानने लगता है तो अन्य सब बातें छोटी लगती हैं। एक बार विशुद्धानन्द जी गाजीपुर थे, उनकी प्रत्यक्ष घटना है-

ठण्ड का समय प्रातः एक स्थान पर सन्ध्या कर रहे थे। ठण्डी लगने लगी वे गुर्राए और विचारा कि शरीर तो पंचमहाभूत है इसे ठण्डी लगती नहीं।

आत्मा चेतन है इसे सर्दी गर्मी लगती नहीं, फिर तो इस चिन्तन में डूब गये और ख्याल आया तो पसीना से तर हो गये थे। उन्होंने अपने मुख से यह बात कही। यह विवेकपूर्ण तितिक्षा का प्रभाव है वैसे दिखावा तो सभी जगह हो रहा है।

५. श्रद्धा-

श्रद्धा अग्नि समिध्यसे श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धाम् भगस्य भूरधानी वचसा वेदयामसि।।

ऋ. १०/१५१/१

श्रद्धा एक अनुपम गुण है। यह वह आन्तरिक भाव है जो व्यक्ति को बड़ो, विद्वानों, साधु सन्त, महात्माओं, वेदादि सत शास्त्र, तथा ईश्वर आदि में सदभाव उत्पन्न करता है। कोइ भी शुभ कर्म की सफलता श्रद्धा पर निर्भर है। यह पवित्र और प्रबल श्रद्धा ही संकल्प बन संसार का उपकार करती है। यह किसी वस्तु या व्यक्ति के गुण कर्म स्वभाव की श्रेष्ठता पर निर्भर है। सत्य को धारण करना श्रद्धा है। श्रद्धा कहते हैं आस्था, निष्ठा, विश्वास को। परमात्मा के प्रति श्रद्धा में उसके गुण कर्म स्वभाव को देख भक्त नतमस्तक हो जाता है।

परमात्मा के गुण :- अगर हम विचार करें तो इतनी बड़ी सृष्टि के रचयिता ने इन पांच तत्वों से ही कितनी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा जीवों को बनाया है। तथा उसका आधार उस जीव के ही कर्म है। उसके लिए कोई दोषी नहीं हो सकता है। और साथ ही इतना न्यायपूर्ण कि न कम न वेष है। हर जीव की अलग पहचान है आत्मा वही है और एक ही योनि की विभिन्नता तथा गुण कर्म स्वभाव अलग-अलग है। यह कितना बड़ा विज्ञान है। बार-बार न जाने कितने

कल्पों से इसी प्रकार सृष्टि और प्रलय होती रहती है। इतने बड़े गुणों के प्रति अगर श्रद्धा से नतमस्तक न हुआ तो फिर क्या हुआ? उतने बड़े नियन्ता का ध्यान न दें। हमने मनुष्यों की मूर्तियां तथा मनमाने देवता बना डाला इनके एक-एक गुण का अज्ञानतावश गान कर रहे हैं, तथा परमात्मा मान बैठे हैं। यह कितनी बड़ी भूल हो सकती है।

परमात्मा के कार्य :- तीन कर्म प्रधान हैं सृष्टि, पालन, प्रलय। सृष्टि बनाना उसकी व्यवस्था देना, चींटी से हाथी तक तथा जलचर से नभचर तक सबकी भोजन व्यवस्था करना। रोग शोक भय उत्तम मध्यम तथा अधम भोगों को भोगवाना। कर्म योनि तथा भोग योनि की व्यवस्था करना। सबका प्रजनन विनाश तथा विकास करना कितना बड़ा कर्म है वह भी बिना किसी की सहायता लिए बगैर करना। जीव आराम भी कर लेता है, सो भी लेता है, लेकिन परमात्मा बिना एक भी क्षण रूके लगातार कार्य करता है। इतना कर्म करने के बाद भी वह पंचक्लेश शुभाशुभ, कर्म के विपाक से परे परम पुरूषार्थी, न्यायकारी, दयालु परमात्मा ही है। इन कर्मों पर विचार कर श्रद्धालु भाव विह्ल हो जाते हैं।

परमात्मा का स्वभाव :- परमात्मा कितना कृपालु है। इस सृष्टि को ही जीवों के कल्याण के लिए बनाया है। यह उसकी परम दयालुता है, कि प्रत्येक जीव के कर्म का सच्चा न्याय करता है। मनुष्य के कल्याण के लिए चार वेदों का भी ज्ञान दिया है। उसकी दया सभी जीव जन्तुओं पर है पर कृपा केवल मनुष्य पर ही है जो वेद मार्ग पर चलते हैं। कैसा विधान दिया है कि अगर जीव अपने वर्णाश्रम धर्म का यथावत पालन करे तो वह चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सहज ही प्राप्त कर सकता है। यह उसकी कृपा ही है कि पाप कर्म को भोग में कम कर देता है तथा पुण्य कर्म के भोग को अनन्त गुना कर देता है जैसे **'जीवेम् शरदः शतम्'** इस सौ वर्ष के विशेष रूप से गृहस्थाश्रम को २५ वर्ष अगर वेदानुकूल हो तो फिर अन्य आश्रम तो शुद्ध ही है। यही भोगाश्रम है। इन्द्रिय जनित दोष संस्कारों के दोषयुक्त हो जाने से, इसी में संभव है, पर इसे संभालने पर ज्ञानपूर्वक कर्म किया जाए, तो वह कर्म ही न रह जाता है, बल्कि उपासना बन जाता है।

वानप्रस्थ और सन्यास को व्यवस्थित कर जीव इस थोड़े से त्यागपूर्ण योग जीवन का फल ३६००० कल्प तक परमात्मा के लोकलोकान्तर मे अव्याहत गति से विचरण कर आनन्द ले सकता है। परमात्मा इतना उदारमना है फिर भी हम हीरे को त्याग, कांच से ही प्यार करते हैं।

ऐसे गुण कर्म स्वभाव वाले परमात्मा के प्रति जिस जीव में श्रद्धा उत्पन्न नही हो, उसका दुर्भाग्य ही है। यह मनुष्य का स्वभाव है। ब्रह्म जिज्ञासा पर इसके कारण ही धर्म और परमात्मा के नाम पर इतने सौदागर अपनी जीविका चला रहे हैं और जनता को अविद्या के अधंकार में भरमाये हैं। धर्म के नाम कितना पाप हो रहा है। इसके लिए तथाकथ़ित धर्मगुरू ही जिम्मेदार हो सकते हैं। इसका समाधान एक मात्र है कि परमात्मा इन्हे सद्‌बुद्धि तथा वेदज्ञान में श्रद्धा दें।

६. समाधान :- समाधान तो समाधि से मिल सकता है और समाधि यम नियमो के पालन तथा योग द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा के प्राप्त होने पर परमात्मा के ऋत् ज्ञान के जो कि ऋचाओं के माध्यम से दिया है, इसके ब्योरे समझ में आने लगता है और यही "ऋतेज्ञानेन मुक्ति" अर्थात जीवन का सही समाधान मुक्ति है। अतः प्रत्येक को शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं यम नियमो के पालन पर ही समाधान संभव है। यह बुद्धि की वह दशा है कि किसी भी समस्या का अन्तरचिन्तन में आने पर समाधान स्वयं मिलने लगता है। मनुष्य उस स्तर पर बौद्धिक विकास कर लेता है कि उसे आत्मा परमात्मा व प्रकृति का यथावत ज्ञान होने लगता है। शरीर के सारे भ्रम मिट जाते हैं। वह मुमुक्ष हमेशा अर्ध समाधिष्ठ सा रहता है। शरीर का अध्यास छूँटने लगता है। वह विदेह या प्रकृति लय कि स्थिति में रहने लगता है। उसे ही जीवन मुक्त भी कहते है। जीते जीते जो मनुष्य मुक्त नही हुआ और वह मरने के बाद क्या होगा? ऐसे मुमुक्ष को ही महर्षि कहते है। जैसे भूखे को भोजन के सिवा कुछ अच्छा नही लगता, वैसे मुमुक्ष को परमात्मा के सिवा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वह निंरन्तर परमात्मा के आनन्द में निंमग्न रहता है। जैसे पानी में डूबे और उतराये यही जीवन का सच्चा समाधान और इसकी सार्थकता भी। धन्य है वह जीवन जिस पर प्रभू की कृपा हो जाये।

ऐसे सन्यासी के लिए अंतःकरण की शुद्धि नियम पालन से तो सम्भव है। पर वह व्यष्टि तक ही रह जायेगा। वह इस अवस्था मे परिव्राट होता है। उसका जीवन परोपकारमय ही होना चाहिए। वही संसार को दिशा दे सकता है। वह पुत्रेषणा, लोकेषणा, वित्तेषणा को नष्ट कर परोपकार मय बन जाता है। परमार्थ में स्वार्थ आया, कि सारे कलह का कारण बना। इसी से सन्यासी को भिक्षा का अन्न खाना चाहिए, इससे अभिमान तथा स्वार्थ का त्याग होता है। अतः यह सातों धातु अन्नदाता की हुई, तात्पर्य शरीर अपना नहीं, खिलाने वाले का है। अतः उसी के काम आना चाहिए। अपना कोई स्वार्थ सिद्ध नही होना चाहिए। इसी कारण उसे यज्ञ हवन भी वर्जित है। परार्थ कर सकता है।

यज्ञ :- महर्षि दयानन्द ने तीन अर्थ किये। दान, देवपूजन और संगतिकरण

१. दान :- महर्षि दयानन्द का कहना है कि दान हर स्थिति में करना चाहिए वह कल्याणकारी ही होता हे।

"श्रद्धयादेयं, अश्रद्धयादेयं, श्रीयांदेयम् हीयां देयम् भीयादेयम् संविदादेयम्"

तैतिरीय उपनिषद से।

अर्थात श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से देना चाहिए, हर हालत में कल्याणकारी हीं होता है।

दान पांच प्रकार से किया जा सकता है १. तन से २. मन से ३. धन से ४. अन्न से ५. ज्ञान से। ये सभी उपकारार्थ कर्म निश्चय ही दान यज्ञ हैं।

तन का दान बहुत महत्वपूर्ण है। स्वामी बिरजानन्द ने महर्षि दयानन्द से जीवन दान ही माँगा। इस दान से जितना संसार का उपकार हुआ, वह कहा नही जा सकता। देश के स्वतंत्रता सेनानिओं ने अपने जीवन दान- यज्ञ से ही भारत को स्वतन्त्र किया था। इन्होने हंसते हंसते फाँसी के फंदो को चूमा था। कितने लोग उपकार के लिए ही आँख, गुर्दे, रक्त दान कर यश कमाते है और कितनों को हीं जीवन दान दे दिया गया। तन साधन है इससे जितनी सेवा ले सकें, लेनी चाहिए, जरा भी आलस्य प्रमाद नही करना चाहिए। शरीर परोपकार और सेवा का सबसे उत्तम साधन है।

मन से हमेशा शिव संकल्प ही करना चाहिए। यज्ञ में मन्त्र और मन का वहुत गहरा सम्वन्ध है। "यस्मिन ऋच साम यजूषि यस्मिन प्रतिष्ठिता.... ...." मन के आरे में ही सव वेद जुड़े हुए है। इसके सकारात्मक संकल्प से ही संसार का कल्याण सम्भव है। अतः इसे योगाभ्यास तथा सत् शास्त्रों के अध्ययनों से शिव कर बनाना चाहिए "मन के हारे हार है , मन के जीते जीत"। "मन एव मनुष्याणाम् मोक्ष बन्धन कारणयोः" जितना अवसाद और संकट है मन के कारण है। अव तो रोग निदान भी मन की ग्रन्थियों को जानने पर काफी सम्भव है। मन से ही मनुष्य है और विचारवान को ही मनीषि कहते हैं। श्रद्धा मन का विपय है, सुख दुख भयादि मन के ही विकार हैं। मन सभी इन्द्रियों को क्रियाशील करता है अतः मन के साधना से ही जीवन यज्ञ सफल हो सकता है। यह शरीर यज्ञ के लिए ही मिला है। इसका उद्धार यज्ञ से ही है। दान यज्ञ में मन ही सब कुछ है। महात्मा हंसराज इसके उदाहरण हैं।

३. धन :- धर्म और धन का वहुत गहरा सम्वन्ध हैं। धन के सदुपयोग और दुरूपयोग सारें सुखों व अनर्थो का कारण है। आज के युग को अर्थ युग भी कहते हैं। सारी दौड़ धूप इसी के लिए है। परिश्रम पूर्ण धन तो कमाना चाहिए। जीवन यात्रा के लिए आवश्यक है, पर आज विना परिश्रम, धोखाधड़ी, अन्याय, अनाचार, लूटपाट, राहजनी आदि का वोलवाला है। चपरासी से मन्त्री तक सभी भ्रष्टाचार मे लिप्त हैं। यह धन कितना सुखकर, शान्तिकर तथा कल्याणकारी, हो सकता है? यह विचारणीय विषय है। महर्षि दयानन्द ने एक ब्रह्मचारी के आम उठाने पर पूछा, मालिक से पूछकर उठाया, नहीं तो पुनः वही रखकर आओ उसने वैसे ही किया।

लेखराम भी आर्य समाज के उत्सव में जाने को किराया स्वामी श्रद्धानन्द से मांगा। उन्होने दोनो तरफ का किराया दिया। उसमें से एक तरफ का किराया लौटा दिया, लेखराम जी ने बताया कि मेरा भी कुछ काम वहां है।

धन से ही स्कूल, अस्पताल आदि अनेक संस्थाएँ चल रही हैं। अपने जीवन की पवित्र कमाई का अधिकाधिक धन दान यज्ञ में देना चाहिए। यज्ञ भी शुद्ध कमाई से करना चाहिए, तथा निःस्वार्थ भाव से होना चाहिए। बुरे कर्म के

लिए कभी दान नहीं करना चाहिए, उसका प्रभाव स्वयं पर पड़ता है। गांजा, भाँग चरस, शराब सेवन करने वाले को दान करना मानो बुराई को वढ़ावा देना है।

किसी लड़की की शादी में सहायता देना, रोगी असहाय को योग देना विधवा; घायल, गोशाला, ब्रह्मचारी को शिक्षार्थ, दान करना याज्ञिक कर्म है। अतः अपनी आत्मा से उचित अनुचित का विचार कर दिया हुआ दान ही याज्ञिक कर्म है। आत्मा सत्य, न्याय, अन्याय, अच्छे वुरे को भली भाँति जानती है। उसकी सहमति आवश्यक है।

अन्न का दान :- अन्न को ब्रह्म कहा गया है। सारी सृष्टि अन्न पर चलती है। यज्ञ में विभिन्न अन्न औषधि का हव्य लोक कल्याणकारी होता है। हमारे यहाँ वलिवैश्यदेव यज्ञ तथा भाग रखने का विधान दिया गया है।

शुचां चं पतितानां श्वपचां पाप रोगिणाम्।
वायसानां कृमिणां च शनकैर्निवेयेदं भूवि।।

अव किसके लिए बाकी रह गया। इसमें ज्यादा विचार की जरूरत नहीं, किसी भी भूखे जीव को अन्न देना यज्ञ है। एकनाथ नाम के सन्त ने रेत में पड़े गधे को शंकर पर चढ़ाने वाला जल पिलाना श्रेष्ठ समझा। अपनी भूख में खाने से तो केवल सुख मिलता है। किन्तु दीनहीन भूखे को भोजन कराने पर आनन्द मिलता है। अतः नंगे को कपड़े व भूखे को भोजन देना महान यज्ञ है। और उत्तम सामग्री घृत आदि से यज्ञ करने से लोक कल्याण, जीव-जन्तु, औषधि, वनस्पति, पशु-पक्षी, जलवायु सबकी गुणवत्ता बढ़ती है। इसी से यह श्रेष्ठतम् कर्म है, जो हर एक को करना चाहिए।

बल से दान :- बलवान लोग एक दूसरे को गिराने में गर्व से अपने आप को पहलवान कहते है। यह प्रेरणादायक तो है पर इसका उद्देश्य याज्ञिक नही है। किसी गिरे को उठाओ गिराओ नहीं। किसी गरीब की रक्षा करो लूटो नहीं, किसी अबला की अस्मत की रक्षा करो। तभी बल का यज्ञ सम्भव है।

उस समय दुर्दिन में लाल बहादुर शास्त्री ने आवाज लगाई थी 'जय जवान

जय किसान' मरे में भी जान आ गई, और नौजवानों ने देश रक्षा में तथा किसानों ने अन्न उपजाने में जान की बाज़ी लगा दी।

इसी प्रकार देश की दुर्दशा देख सुभाषचन्द्र बोस ने ललकारा 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा' इसी पर आजाद हिन्द फौज बन गयी। १९४२ में अंग्रेजो की बर्बरता देख गांधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया और जनता ने गोलियों की परवाह किये बिना कोर्ट, कचहरी, सरकारी दफ्तरों पर तिरंगा फहरा दिया। इसमें स्त्री पुरूष युवा और बच्चे कितने ही शहीद हो गये जिससे अंग्रेजों को कुछ का कुछ और ही करना पड़ गया। यह है बल का महत्व जिससे सब कुछ संभव है। यह क्या नहीं कर सकता।

ज्ञान का दान :- सबसे बड़ा ज्ञान यज्ञकर्ता परमात्मा है जो कोटिशः धन्यवाद के योग्य है जिसने अमृत पुत्रों के लिए चार पवित्र आत्माओं के माध्यम से चार वेदों का ज्ञान दिया।

प्रथम अग्नि ऋषि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद तथा अंगिरा से अथर्ववेद जो चार विषय पदार्थ ज्ञान, यज्ञ ज्ञान, अध्यात्म ज्ञान तथा विज्ञान से भरपूर है। ब्रह्मा से जैमिनी तक ऋषि परम्परा के अनुसार व्याख्या कर जीवन सार निकाला तथा हमारा वर्तमान विकाश सभ्यता धर्म सदाचार, विज्ञान, समाज शास्त्र, गणित, भूगोल, ज्योतिष, व्याकरण आदि द्वारा संसार का कल्याण कराया, जिसका ऋण चुकाया नहीं जा सकता है। इसी से यज्ञोपवीत के कर्तव्यों में एक धागा ऋषि ऋण तथा आचार्य ऋण का है। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। हमें समाज की आवश्यकतानुसार ज्ञान विज्ञान का विस्तार कर समाज कल्याण तथा उपकार करना चाहिए। विकास दर रचनात्मक होना चाहिए ध्वंसात्मक नहीं। यही आज के विज्ञान का दोष है। जो बल प्रदर्शन स्वार्थ तथा राग द्वेष में अंधा तथा बहरा हो चुका है। सभी आदर्श दूसरों के लिए है अपने लिए कुछ नहीं। बलवान और धनवान उतने घातक सिद्ध नही होते जितना की एक ज्ञानवान जो अपने याज्ञिक उद्देश्य से गिर जाता है। अतः ज्ञान यज्ञ महान यज्ञ है। यह बहुत ही सुलझे, सुयोग्य, आस्तिक, आध्यात्मिक बुद्धि का सुकर्तव्य है इसे अवश्य करना चाहिए।

देव पूजन-

यस्य त्रय त्रिशद्देवा गात्रे अंगेविभेजिरे। य०

ब्रह्माण्ड ३३ प्रकार के देवताओं से परिपूर्ण है जो इस प्रकार है- ८ वसु- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ग्रह नक्षत्र, तारे सूर्य और चन्द्रमा जो सृष्टि के वास करने में सहायक हैं।

एकादश रूद्र :- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, कूर्म, नाग, कृकल, देवदत्त धनंजय और आत्मा।

द्वादश आदित्य :- मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन ये बारह राशियां हैं। सूर्य के गति इन राशियों पर होने से बारह मास ६ ऋतुयें तथा तीन मौसम बनते हैं। प्रजापति यज्ञ को कहते हैं विद्युत ये सब मिल ३३ देवता कहलाते हैं, जो जीव के कल्याण के लिए है। परमात्मा देवों का देव है व्यवस्थापक है।

इसके अतिरिक्त ऋषि-महर्षि, साधु, महात्मा, संत सन्यासी विद्वान, वेदज्ञ वैद्य एवं वैज्ञानिक ये सभी देने वाले हैं। संत, ज्ञान तथा सुमार्ग प्रशस्त करते रहते हैं समय-समय पर साथ ही माता पिता, मातर पितर आचार्य पति के लिए पत्नि, पत्नि के लिए पति ये सभी चेतन देव की श्रेणी में आते हैं।

अगर गहराई से विचार किया जाय तो औषधि, वनस्पति, अन्न, फल, फूल, पशु पक्षी, जीव जन्तु भी बहुत उपकारी सिद्ध होते हैं। जो पर्यावरण सन्तुलन कार्य में सहायक, भोजनादि तथा पेय पदार्थ सभी देवता ही है। इसी से पृथ्वी को माता कहा गया है। साथ ही इस भूमि में अनेक प्रकार की धातुएं तथा पोषक तत्व हैं व मिनिरल पदार्थ जो सभी आज के युग में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। वास्तविकता यह है कि तृण से पर्वत तक, यावत सृष्टि है। वह किसी न किसी रूप में हमारे लिए उपयोगी है। हम जाने न जाने इस प्रकार सारी वस्तुएं या कहें सारी सृष्टि ही उपभोग के लिए बनी है। सभी देने वाली है। मनुष्य ही केवल लेवता है।

अगर मनुष्य केवल सभी वस्तु का उपयोग ही करता है। उसकी रक्षा नही

करता है तो इसके असन्तुलन से ही आदि-दैविक, आदि-भौतिक, आध्यात्मिक, भय ताप से पीड़ित होना पड़ता है। जब तक प्राकृतिक सम्पदा, कृषि भूमि और जनसंख्या का सन्तुलन वरावर रहता है तव तक सुखी व स्वस्थ वातावरण रहता है। अतः हमें राष्ट्रीय स्तर पर हमेशा सावधान रहना चाहिए। इनकी विकृति से औषधि वनस्पति दूषित होती है तथा जनस्वास्थ्य व पर्यावरण में दोष आता है। आंकड़ों के अनुसार १४६०० टन दूषित वायु पर्यावरण में नित्य गाड़ी के धूएं पर्यावरण में, दोष कल कारखानों से, मल मूत्र तथा श्वसन क्रिया से होता है इसको वृक्ष आदि लगाकर, गैस आदि के प्रयोग से १४ हजार टन किसी प्रकार सुधारा जा सका है। पर शेष के लिए कोई उपाय नहीं यज्ञ ही विकल्प है। प्रति वर्ष एक करोड़ से डेढ़ करोड़ तक वढ़ती आवादी तथा धुआंधार मोटर गाड़ियों की वृद्धि दिन पर दिन घातक सिद्ध हो रही है। ऐसी हालत में अव यज्ञ ही एक मात्र विकल्प रह गया है। अगर यह पारिवारिक जीवन से जुड़ जाय तो काफी लाभ हो सकता है। इससे पर्यावरण, जल, वायु तो शुद्ध हो ही सकता है साथ ही हमारे स्वास्थ्य रक्षक जीवाणु को भी बल मिलता है। हमारी रक्षात्मक सहन शक्ति कार्य शक्ति बढ़ जाती है। सवसे वड़ी समस्या आज नये-नये रोगाणुओं की है जो मरीज के मलमूत्र तथा कफ थूक से वातावरण को दूषित करते हैं।

दवा द्वारा केवल मनुष्य या पशु आदि को आरोग्य किया जा सकता है पर यज्ञ द्वारा पर्यावरण को स्वस्थ कर रोगाणु को वाहर तथा मरीज के अन्दर से नष्ट कर रोग का यज्ञ द्वारा उन्मूलन किया जा सकता है।

वेदोक्त ३३ देवताओं में प्रजापति यज्ञ को ही कहा गया है। शब्द वताता है कि यह प्रजापति है। यज्ञ ही प्रजा का पति है। पर इतनी उपकारी यज्ञ का, अगर प्रजा उपेक्षा करती है तो परिणाम तो भोगना ही पड़ेगा। यो तो विषय भैषज्य यज्ञ का है। यज्ञ के द्वारा हम पूरे ब्रह्मांड को व्यवस्थित कर सकते हैं। इसी से तो "यज्ञ वै० भुवनस्य नाभि" 'यज्ञवै विष्णु' कहा है। अतः जिससे जीव का उपकार हो वह श्रेष्ठतम कर्म है। अतः हर मनुष्य को कृतज्ञ होकर उपकार के बदले यज्ञ करना आवश्यक ही नही नित्य कर्म भी है।

संगतिकरण :- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। पशु भी संगति में रहना पसन्द

करते हैं। मनुष्य एक दूसरे का सहयोग तथा उपकार कर याज्ञिक वन जाता है। शरीर ही संगतिकरण से वना है। अतः आत्मा परमात्मा और प्रकृति का संगतिकरण ही शरीर में प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा आत्मा का भी संगतिकरण है।

अथर्ववेद कहता है,

'सूर्य में चक्षु वातदन्तरिक्षमात्मा पृथ्वी शरीरम्।
अतस्तृलो नामाहमयमास्य स आत्मनं निदर्धे द्यावा पृथ्वियां गोपीयाय।
। अ.५/६१७।

सूर्य, नेत्र, वायु, अन्तरिक्ष, हृदय, पृथ्वी शरीर और अपने को अपराजित समझ कर द्यावा पृथ्वी के मध्य सुरक्षित रखता हूं। आगे यजुर्वेद कहता है

'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शिष्र्णों द्यौ समवर्तते।
पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोता तथा लोकांऽअकल्पयन।
। य.३१/१३।

संसार में जो भी कार्य रूप है उसका कारण स्वरूप परमेश्वर हीं है। उसके मध्यम सामर्थ्य से अवकाश रूप आकाश है। उत्तम सामर्थ्य से प्रकाश लोक है। पृथ्वी के कारण रूप पृथ्वी स्रोत अवकाश से दिशाएं तथा ईश्वर के सामर्थ्य से अनेक लोक लोकान्तर का निमार्ण हुआ है।

फिर वेद का मन्त्र है "यत्पुरूषेण हविसा देवा यज्ञमतन्वत वसन्तो ऽस्यास्वि दाज्यं ग्रीष्म ऽ इधम शरद्धवि । य. ३६/६८। इसमें पुरूष को यज्ञ मय बताया गया है।

प्रातः सवन में ब्रह्मचर्याश्रम, मध्यम सवन मे रूद्र ब्रह्मचारी, तृतीय सवन आदित्य ब्रह्मचारी। छान्दग्यो ३/१६

थोड़ा और विचार करें तो ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थाश्रम में तीनों याज्ञिक है। ऋतुएं वसंत, आज्य, ग्रीष्म, इधन और शरद हवि है। वसन्त उत्तम ऋतु होने से घृत ही मूल्यवान, गुणवान है। ग्रीष्म जलनशील गुण युक्त

होने से ईधन है। शरद शीत युक्त गुण होने से हवि गुण वाली हैं। फिर यजुर्वेद मन्त्र है-

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवायद्यज्यं तन्वानाऽ अवन्धनमं पुरूषं पशुम्।।

इस अध्यात्मिक यज्ञ द्वारा देव पुरूष उस परमात्मा को बाँधते (प्राप्त) होते है। सप्त छंद (गायत्री आदि) से सूत की तरह सात लपेटों के समान है और प्रकृति यह तत्व अहंकार पाँच सूक्ष्मभूत, पाँच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रियों और रज, सत, तम इक्कीस तत्वों से युक्त मनुष्य चित्त की अग्नि से प्रारब्ध का यज्ञ या हवन कर रहा है। पशु से तात्पर्य बंधा हो पराश्रित है। यह यज्ञ परमात्मा को प्राप्त कर मुक्ति के लिए हैं।

इसी प्रकार "यज्ञो यज्ञेन कल्पन्ताम् यज्ञेन यज्ञमय जन्त देवा"। यज्ञ से यज्ञ कल्पित हुए है। देवता भी यज्ञ से यज्ञ कर रहे हैं।

इन सबका तात्पर्य यही है कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड की विषमता होने पर भौतिक यज्ञ से साम्मंजस्य करना चाहिए। यह अनुकूलन ही यज्ञ का संगतिकरण ही नहीं बल्कि देव पूजा और दान भी है।

विस्तार के भयं से संगतिकरण यही रोक देते हैं। परन्तु भौतिक, आध्यात्मिकं, सामाजिक, सबके मूल में संगतिकरण, दान और देवपूजन ही आधार रूप में वर्तमान है।

यज्ञ की महिमा वेद, पुराण, उपनिषद तथा सत्पुरूषों ने अनेक प्रकार से बतायी गयी है जैसे-

"यज्ञवै श्रेष्ठतमम् कर्म"। "अयज्ञियों हत् वर्चा भवति" नाग्नि होत्रात्परों धर्मः। यज्ञ जनयन्त सूरयः। यज्ञस्य भूवनस्य नाभिः। अनाहुतध्वर व्रजेत। यज्ञोऽयं काम धुक्ष। सर्वेषा देवानां आत्मायद् यज्ञः। अग्नि होत्रिण, प्रणदेसपत्राय। कस्मै त्वं विमुच्जति

तस्मै त्व विमुच्यति। अग्नि वै देवानाम मुखम। सहस्त्र पोसत्यो यज्ञमाहु। यज्ञो हिंत इन्द्रवर्धनों भूत, यज्ञस्ते वज्र महिहत्य आयंत् जानाः स्वर्ग यन्ति लोकम।

आदि अनेक गुण और महिमा का वर्णन है। पूर्व मिमांसा ग्रन्थ में जो यज्ञ का रूप परम कल्याणकारी था। उसमें बाद के स्वार्थी लोगों ने विकृत रूप विनियोग, दुर्पयोग तथा दोष पैदा किए। जिसका परिणाम भयंकर हुआ। बुद्ध धर्म ही इसके विरोध में बना। अजमेध, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध के अनर्थकारी अर्थ कर बकरा, भेड़, गौ, मनुष्य, घोड़े काट उनके मांस से हवन होने लगा तथा इसके पीछे अनेक तंत्र वाममार्ग आदि सम्प्रदाय बनाये जिन्होने यज्ञ की आस्था, अहिंसा, लोक कल्याणकारी, पर्यावरण शोधक, पुष्टिकारक, दुर्गन्धनाशक, विष रोग नाशक, वृष्टिकारक आदि गुणों को हटा स्वार्थ साधक बना विकृत कर दिया। महर्षि दयानन्द की महान कृपा है कि उस वैदिक ज्ञान के महत्व को पुनः सिद्ध किया और हमें रूढ़ियों के गहन अंधकार से निकाला।

जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है उसी के लिए यज्ञ होता है। संस्कारित तथा ऋतुकालीन औषधियों और द्रव्यों से हवन कराने से विद्वान भी सुख पाता है और लोक कल्याण भी होता है। क्योंकि व्यक्ति जगत का जितना उपकार करेगा उसे उतना ही ईश्वर की व्यवस्था में सुख मिलेगा। अतः यज्ञवाद अर्थवाद, अनर्थकारी दोषों को हटाकर जगत का आनन्द बढ़ाने का नाम है।

संस्कार के साथ श्रेष्ठ विद्या का होना भी आवश्यक है। यह प्रयत्न दो प्रकार से है। परमात्मा कृत वेदों में विधान मंत्र तथा व्यवस्था और जीवकृत है उस आदेश का पालन कर स्वसुख में वृद्धि और कल्याण करना चाहिए।

ब्रह्माण्ड में जो भी वस्तु परमात्मा की दी हुई है जल, अग्नि, वायु, उसका हम नित्य उपयोग करते हैं। भोग करने से कितनी ही अधिक वस्तु हो उसमें कमी व दोष अवश्य आयेगा अतः उसका प्रायश्चित उपभोक्ता को अवश्य करना चाहिए। मनुष्य के मल मूत्र, गाड़ियों कारखानों के धुएं, स्नानादि से अनेक प्रकार की गंदगी और दुर्गन्ध वातावरण में होता है। महर्षि ऋग्वेदभाष्य भूमिका

में कहते हैं उसका प्रायश्चित मनुष्य को अवश्य करना चाहिए। पशु आदि भी तो गंदगी करते हैं। उन्हें मनुष्य अपने स्वार्थवश लाता है। अतः इनका प्रायश्चित भी मनुष्य को करना चाहिए।

हव्य को संस्कारित, घी, तेल, गो दुग्ध आदि से करना चाहिए अन्यथा लाभ के बजाय हानिकारक होती है। खाँसी का कारण बनती है तथा रूक्षता लाती है। सामान चार प्रकार के होते हैं। पुष्टिकारक, रोगनाशक, औषधि व दुर्गन्धनाशक सुगन्धित वस्तु- मिष्ठान मधुरता, वायु शुद्ध कारक वस्तु हो तथा गो घृत हो तो, अति उत्तम है यह पौष्टिक तथा विषनाशक होता है।

यज्ञ के चार विधि होते है। श्रद्धा, संकल्प, विधि और मन्त्र इसकी व्यवस्था ब्रह्मा, यज्ञमान, अध्वर, उद्‌गाथा और पुरोहित पर होती है। मन्त्रविधि संकल्पादि की व्यवस्था ब्रह्मा पर जो वेदज्ञ तथा वेदानुकूल हो।

यज्ञमान :- श्रद्धा, संकल्प, हव्य, घृत आदि की व्यवस्था देने वाला। अध्वर को सावधानी आवश्यक है जैसे जीवादि की हिंसा न करना, न ही करने देना, अग्नि का न जलना, सामग्री का व्यतिक्रम, शोर गुल अव्यवस्था सभी पर ध्यान देना चाहिए। होता-एक या अनेक होते हैं तथा परिवर्तित भी सामूहिक यज्ञ में होते रहते है। उद्‌गाथा को अपने कर्तव्य पर ध्यान देना चाहिए। यह भी एक प्रकार का संगतिकरण ही है। देव पूजा और दान भी यही है।

समय दान, व्यवस्था दान, धन दान, दुर्गुण व्रताहुति दे छोड़ना सद्‌गुण धारण करना दान ही है। इसी प्रकार विद्वानों, साधु, सन्तो, तथा वेदविज्ञ विद्वान का सम्मान इनके आदेश का पालन, सदाचार पूर्वक व्यवहार, भोजन, दक्षिणादि से सम्मान देव पूजन है तथा पारिवारिक जन, सामाजिक जन, सम्बन्धी आदि सभी को साथ ले सभी के प्रति शिव संकल्प रखना यह संगतिकरण हैं। यह तो बड़े यज्ञों की व्यवस्था है।

मनु स्मृति में मनु कहते हैं विवाह बाद प्रत्येक गृही को अपना गृहस्थ कार्य चलाने के लिए अनेक प्रकार की हिंसा के दोष जाने अनजाने लग ही जाते हैं। उसके लिए प्रायश्चित, पंचमहायज्ञ, परिवार की गुणवत्ता के लिए अवश्य

करना चाहिए।

मन्त्र- वैवाहिके अग्नों कुर्वीत गृहकर्मायथा विधि।
पंचयज्ञ विधानं च पक्ति चत्वाहिकी गृही।।

अर्थ- गृहस्थ कर्म, पंचमहायज्ञ होमादि तथा विधि करके वाद में भोजनादि कर्म नित्य करे। इसका कारण-
महर्षि मनु वताते हैं-

''पंच सूना गृहस्थास्य चुल्ली पेषमुपस्करः।
कंडनी चोदकुंभश्च वध्यते यस्तु वाहनम्।।

अर्थ- चुल्ली, चक्की, झाड़, ओखल, जल घड़ा से प्रतिदिन न चाहते हुए भी हिंसा हो ही जाती है अतः क्या करे तो फिर लिखते हैं-

तासां क्रमेण सर्वाषां निष्कृत्यर्थ महिर्षिभि।
पंच क्लिक्ता महायज्ञः प्रत्यहं गृहमोधिनाम्।।

हिंसा दोष निवृति के लिए पांच यज्ञ का विधान दिया है। ये पांच यज्ञ हैं कौन?

अध्यापनं ब्रहमयज्ञं पितृ यज्ञास्त तर्पणम्।
होमो देवो वार्लिर्भीतो नृयज्ञोऽतिपूजनम।।

इन पंच यज्ञों का जीवन में इतना महत्व है कि प्रत्येक गृहस्थ को इसे अवश्य करना चाहिये। इससे परिवार की गुणवत्ता बढ जाती है तथा ये संस्कारित परिवार बहुत बड़े पतन के संकट से बच जाते हैं। विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि आश्रम व्यवस्था का यथावत पालन करने वालां, पंच महायज्ञ करने वाला मनुष्य यदि मुक्त न भी हुआ तो मानवेतर योनि में नहीं जा सकता। वह एक प्रकार से योगारूढ़ हो जाता है। म.मनु के अनुसार ही-

स्वाध्यायिनं व्रतेहोमे त्रिविद्येन जया सुतम्।
पंच यज्ञे महायज्ञे ब्रास्मीयां कुरूतेः तनुम।।

वह ब्राह्मण कोटि में आ जाता है तथा ब्रह्मा का अधिकारी हो जाता है।

पंच महायज्ञ :- मनुष्य जन्म पंच महायज्ञों से सफल होता हैं ब्रह्म यज्ञ करने से मनुष्य योनि अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त.आध्यात्मिक लाभ अनेक है। ब्रह्म यज्ञ में जप, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सत्संग स्वाध्याय सभी आते हैं। इससे अन्तकरण के काम, क्रोध, लोभ,. मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि कुप्रवृतियों से होने वाली आधीनता तथा अपवित्रता का नाश होता है। अलग-अलग लाभ यह है कि उपासना से मोह से ग्रसित मन पवित्र होता है। स्तुति से चित्त की शुद्धि होती है। प्रार्थना से अहंकार और जप, सत्संग, स्वाध्याय से बुद्धि की पवित्रता होती है। क्योंकि अगर विचार कर देखा जाय तो बुद्धि लोभ से, मन मोह से, चित्त काम से, वाणी क्रोध से, कान अहंकार से अपवित्र तथा दोषी होते हैं। इसमें अनाध्याय नही करना चाहिए। यह नित्य कर्म है।

देव यज्ञ से जहां आरोग्यता, सुख सम्पत्ति की वृद्धि होती है। वही अन्न, जल, वायु आदि की शुद्धि तथा गुणवत्ता भी बढ़ती है। साथ में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास से आध्यात्मिक उन्नति, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर में पवित्रता आती है।

पितृ यज्ञ से जहां उत्तम माता पिता, स्त्री पुत्र मित्र की प्राप्ति होती है वहीं आध्यात्मिक लाभान्तर्गत वाणी में मधुरता सरसता, पवित्रता और शिष्टता आती है। पारिवारिक अनुशासन; नैतिकता, यश और कीर्ति भी मिलती है।

महर्षि मनु कहते हैं-

अभिवादनं शीलस्य नित्य वृद्धोपसेविन, चत्वारि तस्य वर्धन्ते,
आयुर्विद्या यशोवलम्।

वेद भी कहता है-

अनुव्रता पिता पुत्रो माता भवति सन्मना।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वद्तु् भद्रया।।

अर्थ :- पुत्र पिता के अनुकूल आचरण करे और माता के लिए भी शान्ति देने

वाला हो। पति पत्नि भी मधुर भाषा तथा भद्र बोलने वाले हों। जीवित माता का तर्पण और श्राद्ध करना ही वेदानुकूल है। मरने पर जीव अपने कर्मानुसार पुनर्जन्म में अपने आयु भोग को भोगता है। पुत्र का किया मरने के बाद उसके किसी काम का नहीं।

अतिथियज्ञ :- जो मनुष्य विद्वान, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी छलकपट आदि दोष रहित, सत्योपदेशक, योगी, सन्यासी, विद्या व धर्म प्रचारक भ्रमणशील तथा जिनकी आने की तिथि निश्चित न होवे वे अतिथि कहलाते हैं। अथर्ववेद में मंत्र है-

स्वयेनमभ्युदेत्य ब्रूयात वात्यः क्वाऽवात्सीर्व्रत्योदकं व्रात्य।
तर्पयन्त व्रात्यथाते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथाते,
यशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति।।

अ. १५/११/२

जब कोई अतिथि गृहस्थों के घर आ जाए तो गृहस्थ स्वयं पास जा प्रणामादि कर उत्तम आसन दे पूछे 'कल के दिन कहां निवास किया आपने ब्राह्मण! जलादि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हो ग्रहण कीजिए और हम लोगों को अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए। ऐसे विद्वानों का गृहस्थ हमेशा सम्मान करे तथा उनसे प्रश्न कर सत्य, विद्या, सत्संग का लाभ अवश्य उठावे।

बलिवैश्य देव यज्ञ :- १० मंत्रों से घृत मिश्रित भात या क्षार लवण रहित अन्य पाक की दस आहुतियां दे। मंत्र १. ओ३म् अग्नये स्वाहा २. ओ३म् सोमाय स्वाहा ३. ओ३म् अग्निसोमाभ्यां स्वाहा ४. ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ५. ओं धन्वन्तरयेः स्वाहा ६. ओं कुहै स्वाहा ७. ओं अनुमत्यै स्वाहा ८. ओं प्रजापतये स्वाहा ६. ओं सहद्यावापृथ्विभ्याम् स्वाहा १०. ओं स्विष्कृते स्वाहा।

उसके बाद बलिदान (भाग) किसी पात्र पर यथोक्त दिशाओं में रखे कोई आ जाये तो इसे दे दें अन्यथा अग्नि में डाल दे। उसके बाद घृत सहित लवणान्न लेकर

'शुनां च पतितानां च स्वपचां पाप रोगिणाम।'
वायसानां कृमिणां न शन-कैर्निववेद भुवि।

अर्थ :- कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पाप रोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग उन्हें दे उन्हें प्रसन्न सदा करना चाहिए।

इस प्रकार गृहस्थ धर्म का हर एक गृहस्थ पालन करें। इससे उनकी पवित्रता तथा नैतिकता भी है। यह आश्रम सबसे श्रेष्ठ है। यहीं ब्रह्मचारी पलता है, वानप्रस्थी व सन्यासी जीविका पाता है। अतः इसकी गुणवत्ता परम आवश्यक है।

वलीवैश्व देव यज्ञ से सब जड़ वस्तु से सुख साधन के साथ मैत्री तथा पवित्रता भी आती है। जितना दिया है आगे भी वही ले जायेगा।

अध्यात्म यज्ञ-

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षंति सद्मप्रमादम्।
सप्तायः स्वपत्तो लोकमीयुस्तम्भ जागृतो अस्वप्नजौ समसदौ च देवौ।।
य ३४/१४

सात ऋषि पंच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि यह सोते और जागते शरीर की रक्षा कर रहे हैं। शयनकाल में यह तमोगुण से दब वाह्य कर्मों से उपराम से शान्ति प्रदान करते हैं। तथा अंतर स्वप्नादि से जीव की रक्षा करते तथा प्राण अपान से ज़ागृत स्वप्न में रक्षा करते हैं। यह कितना बड़ा उपकार है कि अगर हमेशा चेतन या रजोगुण का ही प्रभाव रहे तो सारी दुनिया पागल मिलती। इस प्रकार खोई शक्ति की रक्षा तथा कार्यशीलता दोनों प्रकार से है। ये ऋषि यज्ञ कर रहे हैं।

'यज्ञ शक्ति पुस्तक' आध्यात्मिक रूप यज्ञ श्रद्धा से करनी चाहिए। श्रद्धा सत् धातु से बनी हे। कोई भी सत्य, ऋत, धर्म योग आंदि बिना श्रद्धा के नहीं हो सकते। श्रद्धा से ही योग भी बनता है और योग से आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का ज्ञान होता है।

यज्ञ की हवि से अन्नमय कोष का शोधन होता है। चार प्रकार के सुगन्धित औषधि, पुष्टिकर, मधुर तथा घृत से जो ऊर्जा शक्ति परमाणु होकर निकलती है। एक प्रकार का 'आप' जिसे सोम कहते हैं। शरीर संयोगज होने से यह सोम शरीर के छिद्रों से रोमकूपों में प्रवेश कर सभी अनर्थकारी पदार्थ, दोष तथा रोगों को नष्टकर जीवनी शक्ति बढ़ाता है।

इस प्रकार तत्व ज्ञान की दृष्टि से पंच तत्व का पूर्ण शोधन हो जाता है। पुराने परमाणु विकार-वन निकल जाते हैं तथा नये परमाणुओं से कार्य क्षमता बहुत वढ़ जाती है जो भौतिक उन्नति में सहायक होती है। वैज्ञानिक भी कहते हैं कि नौ वर्ष में पुराने सेल्स बदल कर नये हो जाते हैं। अतः शरीर नूतन हुआ करता है। इसी से तो कहा है कि 'अन्न शुद्धिःसत्व शुद्धिःसत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।' इस प्रक़ार शोधित शरीर योग के लिए वरदान बन जाता है। इसी से नित्य यज्ञ का विधान है। यह हवि हीं अन्नमय कौष के शोधन के कारण हैं।

यज्ञ की समिधा :- समिध्म से प्राणमय कोष का शोधन होता है। समिधा अधिकतर दूध वालें वृक्षों की ज्यादा उपयुक्त होती है। इसमें तन-मात्राओं काँ शोधन होता है, ये सौम्य होती हैं अतः सौम्य परमाणुओं का शोधन होता है।

यज्ञ की जलन तथा प्रचण्डता से मनोमय कोष का शोधन होता है। कर्मेन्द्रियां क्रियाशील होती हैं तथा इनका शोधन भी होता है।

अग्नि की संयोजक-विभाजक शक्ति से विज्ञानमय कोष का शोधन होता है। स्थूल हवि, घृत, समिधा परमाणुओं में परिणित होकर ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करते हैं। यह यज्ञ के विस्तार या सूक्ष्मीकरण की वैज्ञानिकता है जो ज्ञानेन्द्रिओं को शोधती है।

इस प्रकार मल विक्षेप और आवरण के नष्ट होने से आनन्दमय कोष का शोधन होता है तथा आत्म परमात्म योग का सुयोग बनता है।

यज्ञ में श्वेत रंजित रूप ऊषा पैदा होती है। अगर यज्ञकर्ता ध्यानपूर्वक सुषुम्ना में योग करे तो ऊषा पान करता है अर्थात् ऊषा बौद्धिक आलस्य को दूर भगाती है। उत्साह आध्यात्मिक प्रकाश पवित्रता उत्पन्न कर वासनाओं तथा

अज्ञान का निवारण होता है। पर इसके लिए यज्ञकर्ता काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आलस्य, असत्य, अहंकार आदि छोड़ दे। इससे श्रेष्ठ गुणों का विकास तथा जीवन पवित्र बनता है, जो हर लोक परलोक दोनों के लिए उपयुक्त है।

सामवेद में -

देवानाम् इदम् महत् तदा वृणीमहे वयम्।
वृषणाम्ऽस्मम्यं भूतये।

अध्यात्म का तात्पर्य है कि शरीर में अन्तकरण तथा इन्द्रिय रूप अनेक देवता ऋषि निवास करते हैं। अगर इनका सही पूजन सम्मान संयम से हो तो ये सुखों की वर्षा करते हैं।

अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप :- पंचभूत की वेदी पर तन्मात्माओं की समिधा, मन यजमान, बुद्धि ब्रह्मा, इन्द्रिय होतारः, चित्त की अग्नि में प्रारब्ध कर्मों की हवि देना परम कल्याण मय यज्ञ है। जीव यही कृतार्थ हो जाता है।

मधुर वेद मंत्रों के माध्यम से हव्य देने वाला यज्ञकर्ता अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश आदि देवताओं के ऋण से जहां उऋण हो जाता है वहीं वेद मंत्रों से ऋषि ऋण से उऋण होता है। अग्नि में डाली गई आहुति सूर्य की किरणों से मिल सभी देवताओं तक पहुंच जाती है।

जिनके घर में यज्ञ नहीं होता उनके सात लोक नष्ट हो जाते हैं। ये सप्त लोक, सिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, पैर तथा पुनः सिर हैं। इनकी शुद्धि ही धार्मिक कृत्यों का उद्देश्य है। इनके अशुद्ध होने से संताप बढ़ते हैं।

याज्ञिक को सात प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं।

अथर्ववेद में

"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम आयुः प्राणम्, प्रजां, पशुम, कीर्ति, द्रविणम्, ब्रह्मवर्चसम्, महयं दत्वा व्रजतः ब्रह्मलोकम्।।"

आयु, प्राण, शक्ति, आज्ञाकारी पुत्र, पशु, यश, लक्ष्मी धन परमार्थतः भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक शान्ति मिलती है।

भौतिक यज्ञ आध्यात्मिक यज्ञ की आधार शिला है। आध्यात्मिक यज्ञ आन्तरिक विकास, धारणा, ध्यान, समाधि का आधार तथा समाधि ही मानवीय समस्याओं का समाधान और चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की सिद्धि है। ये सव याज्ञिक कर्म पर ही निर्भर है। इसी से यज्ञ के माध्यम से यज्ञमय कर्म की कल्पना की गई। ईश्वर परमयाज्ञिक है अतः हमें भी याज्ञिक होना चाहिए। सामवेद कहता है-

सखाय निसीदत पुनानायं प्रगायत शिशु यज्ञेन न भूषितैः श्रियैः।

यज्ञ में सोमपान :- यज्ञ में आओ तो सभी ईष्ट, मित्र, भृत्य, वच्चे और परिवार के साथ आओ, क्योंकि इससे जीवन परम पवित्र हो जाता है। 'कैसे' जैसे कि मां अपने वच्चे को मलमूत्र से सने हुए देखकर उसे उठा, स्नानादि करा वस्त्रादि द्वारा सुसज्जित करती है। उसी प्रकार यज्ञ भय, ताप, कुसंस्कार, भक्ष्याभक्ष्य तथा मादक पदार्थों रूपी मल को धोकर स्वच्छ, सज्जन बना देती है। अतः यज्ञ में 'अनाहूतःऽध्वरम् व्रजेता' विना बुलाये भी जाना चाहिए क्योंकि यह तो श्रेष्ठतम कर्म है।

यज्ञ में सोमपान का प्रकरण भी है जिसे आज गलत रूप में प्रयोग किया जाता है। सोम विशेष प्रकार की औषधि भी हो सकती है। जिसके रस को पीने का विधान है जो विशेष गुणकारी होती हो। यजुर्वेद में वारह महीने यज्ञ का विधान दिया है तथा महीनों के गुण भी उसके साथ जुड़े हैं।

मधवे स्वाहा, माधवाय स्वाहा, शुक्राय स्वाहा, शुचये स्वाहा, नभसे स्वाहा, नभस्याम् स्वाहा, स्वाहेवस्य स्वाहा, स्वाहोजार्य स्वाहा, सहसे स्वाहा, सहस्याय स्वाहा, तप से स्वाहा, तपस्याय स्वाहा, हसस्यतये स्वाहा।। ३१।।२२।

(मधवेन) मधुरादि गुणोंत्पादक काम है चैत्राय स्वाहा (माधवाय) वैशाखाय

स्वाहा। (शुक्राय) शुद्धिकारक ज्येष्ठाय स्वाहा। (शुचये) पवित्रकारक आषाढ के लिए यज्ञ क्रिया (नभ से) जल वर्षक श्रावण के लिए यज्ञ क्रिया (नभस्याय) वर्षा के लिए प्रसिद्ध भाद्रपद के लिए यज्ञ क्रिया (ऊषाय) अन्न पैदा करने वाले क्वार के लिए यज्ञ क्रिया (ऊर्जाय) बल अन्न पैदा करने वाले कार्तिक के लिए (सहसे) वल दायी अगहन (सहस्याय) बल देने में उत्तम पौष के लिए (तपसे) उत्पादनकारी माघ के लिए (तपस्याय) तपसि साधक फाल्गुन तथा (अहंस) मलमास के लिए (पतये) पालन करने वाले के लिए यज्ञ क्रिया।

विभिन्न राशियों पर सूर्य के बदलने पर महीनों के गुण, कर्म स्वभाव में परिवर्तन होता है जो इस मंत्र में हर महीने के नाम से ही यौगिक रूप से जुड़ा है। इसी आधार पर वनस्पति व औषधि के गुण कर्म स्वभाव में भी परिवर्तन होता है। मुख्यतया दो प्रकार की औषधि, वनस्पति तथा अन्न फल होते हैं। १. ऊष्ण वीर्य २. शीत वीर्य। इन्हीं अग्नि और शीत के संधिकाल में वनस्पति औषधियों का प्रजनन काल भी है उसी संधि काल में ही अनेक प्रकार के रोगाणु जन्म लेते हैं। उनसे त्राण पाने के लिए औषधि। उसी काल में औषधि भी उत्पन्न होती है। यह देश काल जलवायु पर भी निर्भर करती है। आयुर्वेद की सभी खोज इन्हीं आधार पर है। कफ, वात तथा पित्त शामक दवायें तथा रोग भी होते हैं। विशेष शीत (कफ) तथा ऊष्ण में (पित्त) प्रधान होता है। वायु जिससे मिलत्ता है उसे उद्दीपित कर देता है। इनकी समान स्थिति स्वास्थकर होती है। इस विषय पर औषधि विज्ञान तथा उसका उपयोग में लिया जायेगा। यहां सोम के विषय को जानने का प्रयत्न करें।

'वैदिक सम्पदा' में रघुनन्दन प्रसाद ने बड़ी खोजपूर्ण बातें दी है। अधिकतर वैदिक विद्वानों का विचार एक प्रकार की औषधि से है। जिसका रस बहुत गुणकारी होता है। जिसे लोग यज्ञ के अवसर पर निकालते और पीते हैं।

विचारणीय विषय यह है कि अगर औषधि का रस तथा कोई वस्तु है तो उसका पान यज्ञ अवसर पर ही क्यों किया जाता है। उसे किसी भी समय सेवन करके गुणवान व बलवान बना जा सकता है। इसमें अवश्य ही कोई रहस्य है। यूं तो वेदविदों को ऐसी औषधि की तलाश आज भी है। पर ऐसी कोई औषधि मिली नहीं।

पं. रघुनन्दन प्रसाद के अनुसार पागवी महोदय सोमलता को मूजवान पर्वत पर बताते हैं। पर मं. सश्रुत मूजवान को सोम का पर्याय बताते हैं। मूजवान पर्वत 'कहीं आता भी नही है। सुश्रुत के विचार में यह हिमाचल पर होती है। लक्षण पूछने पर बताया कृष्ण पक्ष में इसके एक-एक पत्ते नष्ट होते हैं तथा शुक्ल पक्ष में पुनः निकलते हैं। इसके कन्द को स्वर्ण की सुई से रस निकाल पी जावे तो अग्नि में जले नहीं, १००० हाथियों का वल आ जावे और १०,००० वर्ष की आयु प्राप्त करें। जिसके ऐसे लक्षण हो तो मनुष्य इसे क्यों छोड़े? मंगल चन्द्रमा तक पहुंच गया। ऐवरेस्ट पर चढ़ना खेल हो गया समुद्र की गहराई को नाप डाला। ऐसा कौन सा भाग है जो आज तक नहीं मिल सका फिर लक्षण भी ऐसे हैं कि छिपाये नहीं जा सकते हैं।

इनका आसय यही निकलता है कि वास्तव में चन्द्रमा ही १५ दिन में घटता वढ़ता रहता है। तथा इसे सोम भी कहते हैं। तथा यह औषधि राज भी है क्यों कि सूर्य औषधियों को पकाता है। उसमें अमृत गुण तो चन्द्रमा से ही प्राप्त होता है। सभी गुणकारी औषंधियां सोमयुक्त है। यजुर्वेद का एक मंत्र-

शतं यो अम्ब धामानी सहस्रमुत योरूहः।
अधा शक्रत्यो यूयमिमं अंगदः कृतः।। वैदिक सम्पत्ति।।

अम्ब तुम सैकड़ों हजारों प्रकार से उगती हो। मेरे यज्ञ में आओ और आरोग्यता प्रदान करो।

तीनों बहनों के साथ हवन करों।

प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा।
अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानति कश्चन।।

यह निश्चित ही किसी व्यक्ति के लिए नही है। प्राण अपान व्यान पर प्रधानतया शारीरिक विकास तथा अध्यात्म निर्भर है।

'त्रयम्बकं यज्ञामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्धनम्'

यों तो परमात्मा सर्व गुण सम्पन्न है पर जीव के लिए पुष्टिकारक और

सुगन्ध वर्धन की व्यवस्था दी है।

जो यज्ञ द्वारा अधिक स्वास्थ्यकर सिद्ध होती है। तो क्यों ना ऋतु काल के सन्धिकालीन जिस समय रोगाणु उत्पन्न होते हैं तथा उनको नष्ट करने वाली औषधि भी सुलभ हो तो उसी का हवन कर रोगाणु नष्ट कर सुगन्धित व पुष्टि कर वातावरण बना पुरूषार्थ सिद्ध करें। जो मृत्यु से परे अमृत पद है। इसमें मेरा कोई दुराग्रह या हठ नहीं है। यह एक प्रेरणास्पद सोचने की उत्तम विद्या का निर्देश मात्र है। कितना सही कितना गलत यह जानना तो कठिन है। कुछ शब्दों का सहारा लें तो अनुमान प्रमाण ही है।

सोम पर वैज्ञानिक विचार :- सत रज तम के साम्यावस्था में मूल प्रकृति प्रलय काल में होती है। विज्ञान और वेद दोनों के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में एक धमाका हुआ जिससे तेज प्रकट हुआ और सभी परमाणुओं पर छा गया। इससे महदभूत की उत्पति, क्रियाशीलता आयी। यह एक व्यवस्था रूप में क्रियाशीलता का प्रारम्भ हुआ इसी से इसे बुद्धि कहते हैं। ऋग्वेद १/१६३/१ मंत्र है 'यद् क्रन्दत प्रथम जायमाना' से भी यह धमाका सिद्ध होता है। यह क्रियाशीलता सत, रज तम या इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान मित्र, वरूण या अर्यमा रूप में है। ये समाज में समान पर विकर्षण तथा असमान पर आकर्षण से क्रियाशीलता हुई। इसे अहंकार भी कहते हैं। इसकी गति से मरूत की उत्पति हुई। इलेक्ट्रान वहुत तीव्र, न्यूट्रान शिथिल तथा प्रोट्रान मध्यम है। न्यूट्रान व अन्य परमाणुओं के सिमटने से बड़ा शिथिल होने से लगातार इलेक्ट्रान से टकराता है। इसे वृतासुर और इन्द्र का संग्राम भी कहते हैं। न्यूट्रान को इलेक्ट्रान तोड़ता है। जिसे वज्र प्रहार भी कहते हैं। और यह न्यूट्रान दूर पराग की तरह हमेशा अन्तरिक्ष से वायु तथा वर्षा के मौसम में वृष्टि के माध्यम से वनस्पति औषधि तथा जीव जन्तुओं को मिलता है तथा पृथ्वी पर उसकी गुणवत्ता भी बढ़ाता है। यही सोम है। जो अनेक प्रकार के मिनरल धातुओं के परमाणुओं का रूप है। सवको अन्तरिंक्ष से मिलता रहता है। इसे सोम कहते हैं। इसके बिना कोइ जीवित नहीं रह सकता। प्रलय काल में ही रूकता है। सृष्टि पर्यन्त चलता है।

इसी क्रियाशीलता पूर्वक टकराव से लगातार चमक होती रहती है। इसी

कारण से ये दूरदर्शी यन्त्र द्वारा देखे जा सक़ते हैं। विज्ञान का कार्य कलाप यहीं तक है। हमारे ऋषि कपिल आदि ने मूल प्रकृति साम्यावस्था तक को अपने ध्यान योग से पता लगाया और 'सांख्य दर्शन' की रचना की जो प्रकृति ज्ञान का उत्तम दर्शन है।

वेदो में सोम (गुरूदत्त) इसका याज्ञिक रूप तथा महत्व :- अब विज्ञान और वैदिक सम्पति दोनों देखने से यह एक सामजस्य सामने आता है कि **'यथा पिण्डे तथा ब्रहमाण्डे'** इसका रहस्य खुला है। इन सारे जीवों की जीवनी शक्ति परमाणु रूप में अन्तरिक्ष में और वहां से वर्षा व सूर्य की किरणों के माध्यम से अन्तरिक्ष से बरसती रहती है। जिससे इनकी जीवन शक्ति तथा नूतनता बनी रहती है। और उपभोग किया गया दूषित तत्व बहुत कुछ वृक्षों, जंगलों, पशुओं, जीवों, पक्षी आदि द्वारा भी होता रहता है। तत्व नष्ट नही होता वरन् एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित होकर अन्तरिक्ष में ही चला जाता है। और अन्तरिक्ष में सोम तथा दूषित तत्वों के साथ सम्मिश्रण के रूप में वाद में उपयोग में आता रहता है। पूर्ण शुद्ध तत्व तो आज इस बढ़ती आवादी में मिलना भी मुश्किल है परन्तु जीवित रह सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति परिणामी कहा गया है। जो हमेशा बदलती रहती है।

यह बदलाव कई प्रकार से होता है। प्रथम अन्तरिक्षीय परमाणु (सोम) पृथ्वी तथा वनस्पतियां प्रभावित होती है। वनस्पतियां पृथ्वी से इन तत्वों को खिंचती हैं तथा श्वसन से वायु जल का भी शोधन कर वायु को आक्सीजन में तथा जल को रस में परिवर्तित करती हैं। इन्हें जीवों का भोजन बन रक्त, मांस, मेध, हड्डी, वीर्य, मज्जा आदि बनती है। इस प्रकार तत्व बार-बार शोधित होने से सूक्ष्म तथा गुणकारी हो जाता है। इस वीर्य को भी सोम कहते हैं। तथा वनस्पति में उसके गुण कर्म स्वभाव का रक्षण उसके बीज द्वारा होता है।

बीज का गुण यह है कि पृथ्वी से सारे तत्व सभी वनस्पति औषधि को एक समान से मिलते हैं। पर उसके बीज में वह ग्रहण करने की शक्ति तत्वों की अलग-अलग ह़ोती है। इस कारण इनकी अलग-अलग पहचान है। इसमें विद्वानों ने षट रसों को प्रधानता दी है इन्हीं के मेल इन सब में निहित है। वही उनके गुण है जिस ध्येय से परमात्मा ने बनाया है। उसका उपभोग, उसकी

कर्मशीलता तथा स्वभाव सन्तुष्टि आरोग्यता तृप्ति तथा आज की भाषा में विभिन्न बिटामिन तत्व प्राप्त कर जीवों के स्वास्थय का सन्तुलन तथा क्षमता और जीवनी शक्ति मिलती है। यह एक प्रकार से उस परम पिता परमात्मा के ज्ञान तथा वैज्ञानिकता का परिणाम है। पर इस ईश्वरीय सन्तुलन को कायम रखना मनुष्य का कर्तव्य है।

परमात्मा की यह व्यवस्था तो ठीक है पर उसमें सन्तुलन रखना या व्यतिरेक करना मनुष्यों का कार्य है। इससे ही भयताप की उत्पत्ति होती है। आदि दैविक आदि भौतिक, आध्यात्मिक ईश्वरी प्रतिकार बन जाता है।

यही पर्यावरण दोष मनुष्य के लिए चिन्ता का विषय है। इसका निराकरण, जनसंख्या नियन्त्रण, जीव जन्तु संरक्षण भौतिक याज्ञिक कर्म है।

सम्भवतः यही प्रदूषण पर्यावरण दोष जल, वायु, अग्नि, शब्द प्रदूषण तथा मन प्रदूषण मिल कर प्रलय का कारण होंगे। जन्म का मरण, उत्थान का पतन तथा सृष्टि का प्रलय भी निश्चित है। उस पर विचार अलग से दिये जायेंगे। अभी तो यथा शक्ति संरक्षण कैसे हो सकता है। यही विकराल प्रश्न बना हुआ है।

अन्तरिक्ष भी अनेक प्रयोगों के कारण दूषित हो चुके हैं। ओजोन परत में भी छिद्र हो चुका है। जिससे विषैली घातक किरणें सीधी आ रही हैं। विश्व के बढ़ते तापमान से सभी चिन्तित हैं। पर इसका निदान क्या हो सकता है? ग्लेशियर पिघल रहे हैं। समुद्र विस्तारित हो रहे हैं। यह भविष्य का संदेश दे रहे हैं विज्ञान प्रयत्नशील है। हमारे समझ में विज्ञान का झुकाव यज्ञ की तरफ हो जावे तथा निदान वेदों में खोजें तो अवश्य कुछ मिल सकता है क्यों कि वेद सृष्टि संविधान है। जो न केवल वर्तमान में ही बल्कि लगभग २ अरब वर्ष से चला आ रहा है और सम्पूर्ण आयु ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का है। अतः इस पर विचार करना आवश्यक है।

भैषज्य यज्ञ :- जैसे वर्ष को सूर्य व पृथ्वी की गति के आधार पर उत्तरायण व दक्षिणायन दो भागों में बांटा है। वैसे ही वर्ष को तीन मौसम ग्रीष्म, वर्षा और

शरद में बांटा है जिन्हें पुनः सूक्ष्म षट् ऋतुओं में बांटा है।

मौसम में समय का परिवर्तन तो है ही इनके संधिकाल में एक विशेष परिवर्तन वातावरण में आता है। उसी परिवर्तन के अनूकुल न रहने से अनेक प्रकार के रोग पैदा होते हैं। यह विषमता का कारण है जो अन्य कारणों पर निर्भर करता है।

प्रथम- जन्म पर आज जनसंख्या वृद्धि की समस्या कम है। नये विचार में इसकी गुणवत्ता पर विशेष जोर दिया जा रहा है। यह माता पिता के स्वास्थ्य संयम नियम पर संतान की शारीरिक क्षमता बुद्धिमत्ता तथा विकास निर्भर करता है।

द्वितीय- जन्म से पहले ही औषधि से उसे स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करना।

तीसरा- मंत्र या सोच में परिवर्तन से अनेक प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग, अवरोध, सामयिक परिवर्तन भी संभव है। इन्हें संस्कार का रूप भी दे सकते हैं।

चौथा- तप स्वास्थ्य सम्बन्धी आसन, व्यायाम, प्राणायाम, योग, यम नियम का पालन तथा शरद, गर्म को सहन करने की क्षमता की उत्पत्ति परमावश्यक है।

पांचवा- आध्यात्मिक भावनाएं ईश्वर विश्वास तथा आत्म चिन्तन से सम्बन्धित है। इसमें इन्द्रिय संयम चारित्रिक नैतिकता, सदाचार, ब्रहमचर्य पालन, आश्रम व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

ये सभी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है और धरती (बीरभोग्या वसुन्धरा) अर्थात् योग्यों के लिये है। केवल संख्या बढ़ाने से धरती का भार गरीबी, सामाजिक समस्यायें आदि बहुत बढ़ सकते हैं। इस विषय पर मुस्लिम समुदाय तो बिल्कुल ही असावधान है। जो संख्या को महत्व दे रहा है। यह चिन्ता का विषय है। मैंने मुस्लिम अध्यापक से इस विषय में प्रश्न किया तो उनका उत्तर यही मिला कि 'यह चिन्ता का विषय नहीं' खुदा ने मुख दिया है तो हाथ भी तो दिया है।

यजुर्वेदानुसार-

अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, मोदाय स्वाहा, सवित्रे स्वाहा, वायवे स्वाहा, विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा, वृहस्पतये स्वाहा, मित्राय स्वाहा, वरूणाय स्वाहा।
य.२२/६

अर्थ- यदि मनुष्य आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घृत हवि को होमता है। वह औषधि जल, सूर्य के तेज, वायु, बिजली आदि को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य को बढ़ाने प्राण अंपान, प्रजारूप, रक्षा तथा श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है। पदार्थ नष्ट न होकर परिवर्तित होकर सबके कलयाण का कारण बनता है।

भैषज्य यज्ञ आयुर्वेद से सम्बन्ध रखता है। वास्तव में आयुर्वेद से दो तत्व सर्दी व गरमी है। वायु न शरद न गरम बल्कि जिससे मिलता है वैसा हो जाता है। तथा उसे गति देकर उद्दीपित कर देता है। रोग अधिकतर ऋतु की सन्धिकाल में ज्यादा होते हैं। इसके लिए आर्युवेदज्ञ होना आवश्यक है। इसको समझने के लिए पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड की संरचना तथा क्रियाशीलता का कारण ही विरोधी तत्व हैं। जैसे शरीर को लें लिजिए। इसमें वाम और दक्षिण इडा और पिंगला, सूर्य चन्द्र तथा अग्नि तथा सोम सर्वत्र व्याप्त हैं। ये विरोधी तथा एक दूसरे के शामक हैं।

शतपथ ब्रा.- द्वयं वा उद्वं तृतीयमस्ति। अद्रि चैव शुष्कं च यच्शुष्कं तदाग्नेय यदार्द तत्सौम्यं, अग्निष्ठोमयोर्ह वै ताव ही विभूति प्रजापति सूर्य एवाग्नेय चन्द्रमा सौम्य।

अर्थात्- सूखा और गीला दो ही हैं। तीसरा नही। अग्नि ही सूखा है और सौम्य ही गीला है। सूर्य ही अग्नि है और चन्द्रमा ही सौम्य है।

ब्रहमाण्ड में सर्दी और गर्मी के कारण ही ऋतुएं हैं। जो सूर्य और पृथ्वी की गति पर निर्भर हे। यह ज्ञान भैषज यज्ञ के ब्रह्मा को अवश्य होना चाहिए। उसी के अनुसार सामग्री का चयन होना चाहिए। वेदों में बहुत प्रकार की औषधियों का वर्णन है जो यज्ञ में काम आती हैं। समिधा का भी विचार आवश्यक है। महर्षि

दयानन्द ने चार प्रकार की औषधियां दी भी हैं। सुगन्धित, पौष्टिक, रोगनाशक और मधुर। जंगलों के अभाव में हमारी औषधियां लुप्त होती चली जा रही हैं। अब सरकार जड़ी बूटी व औषधि के कृषि पर तो ध्यान दे रही है परन्तु कृत्रिम उर्वरक तथा रासायनिक रोग नाशक विषैली दवाओं से विषाक्त हो पूर्ण गुणकारी सिद्ध नहीं हो पा रही है।

परमात्मा ने भारत को तीन मौसम व षट ऋतुओं का देश बनाया है। इसका प्रभाव अन्न फल जड़ी बूटी आदि पर पड़ता है। सारे विश्व में दो ही मौसम है। साथ ही स्थानीय जड़ी बूटी आदि में स्थानीय अनुकूलन शक्ति है। ये तो पर्वती क्षेत्र जहां जलवायु शुद्ध और पवित्र होती है। विशेष गुणकारी होती है। स्थानीय से भी काम ले सकते हैं।

इन औषधियों की उत्पत्ति तथा परिपूर्णता पर विचार करें तो संधिकाल के प्रारम्भ में जो औषधि जमती है उसके आदि तक पककर तैयार हो जाती है। इसके पकने के संधि काल में जो उगती है वह उसी मौसम के समापन तक पककर तैयार भी हो जाती है। और नये मौसम के प्रारंम्भ में नई औषधियां जमने लगती हैं। जो उसके समापन तक तैयार हो जाती है। इस प्रकार तीन प्रकार की औषधियां जन्म लेती हैं। और तैयार होती हैं। आश्चर्य यह है कि जिस मौसम में जो औषधि पैदा होती है उसी मौसम के एक-एक दिन के परिवर्तन के प्राकृतिक गुण उसमें संचित रहते हैं। प्रकृति परिणामी है। महीने की एक दिन की (छटा) स्थिति दूसरे दिन नही मिलेगी दूसरी की तीसरे दिन नही यह क्रमशः पूरे मौसम में और वनस्पति और औषधि में आता रहता है। और उसके पकने पर प्रतिदिन के कारण उसमें निहित हैं।

अब तीनों मौसम में तीन तत्व का वेग रहता है। शरद में शीत, गर्मी में गर्म और वर्षा में वायु और अग्नि का। इससे कफ प्रधान वायु अग्नि पर कफ प्रधान बरसात (न्युट्रल) उदासीन है दोनों रहते हैं। जैसे मलेरिया अग्नि प्रधान तथा शीत का भी है तथा दर्द शीत वायु से होता है। बरसात में वायु नाशक औषधियां ज्यादा पैदा होती हैं। पित्त नाशक भी जैसे अपमार्ग, असगन्ध, धतूरा, रास्ना; तुलसी, गुम्म (अमृत कलश) चिरायता लस्टोर आदि।

अतः विचार करने पर हमें दो ही तत्व औषधि में प्रधानतया मिलते हैं। तीसरा रोग या दवा दोनों के योग से बनती है। एक को हम ऊष्ण वीर्य तथा दूसरे को शीत वीर्य भी कह सकते हैं। उत्पत्ति के विचार से. सर्दी में ऊष्ण वीर्य औषधि ही उत्पन्न हो सकती है। इसका कारण यह है कि इसमें बाह्य शीत को सहन करने की क्षमता होती है। अगर इस औषधि और वनस्पति में बीजगत सहन क्षमता नही. है तो वह विकसित नहीं हो सकती। तथा ग्रीष्म में शीत वीर्य औषधि ही सफल हो सकती है। उसके बीज में ग्रीष्म सहन करने की क्षमता होगी।

तीसरी वे औषधियां हैं जो संधि काल में तो आती हैं लेकिन उनमें सर्दी गर्मी दोनों को सहन करने की सम्यक क्षमता होती है। वे पूरे साल में तैयार होती हैं।

अतः निर्णय तीन प्रकार का निकला प्रथम ऊष्णवीर्य प्रधान जो शीतकाल की उपयुक्त औषधि है। दूसरी शीत वीर्य प्रधान जो ग्रीष्म के लिए उपयुक्त औषधि है। तीसरी विशेष न शीत वीर्य न उष्ण वीर्य सामान्य औषधि जो वर्ष भर तैयार होती है। इनका प्रयोग भी इसी प्रकार का है। शीतकाल में ऊष्ण तथा ग्रीष्म में शीत तथा वर्षा रोग अधिकांशतः द्वन्दज वायु और अग्नि से पैदा होती है वे सामान्य औषधि होती है।

इसका विज्ञान परमात्मा ने इस प्रकार से बनाया है वह यह कि पृथ्वी हर प्रकार के बीज को अपने गर्भ में संग्रह करती है। पर यह बीज हर समय नहीं जम सकता वह अपने समय से ही जमेगा यही उसकी भिन्न गुणवत्ता का ही स्वरूप तथा कारण भी है।

अतः यहां आकर मैं हनीमैन को नहीं भूल सकता जिन्होंने इस तथ्य को समझा कि जिस मौसम में जो रोग पैदा होता है वहीं जल, वायु उस प्रकार की औषधि पैदा करती है। और उसी के प्रयोग से इस मौसम गत सारे रोगों का इलाज भी हो सकता है। पर स्थूल से उतना नही जितना सूक्ष्म से। अतः यहां मानसिक चिकित्सा भी सूक्ष्मीकरण का प्रभाव है। अतः होम्योपैथी और यज्ञ के सिद्धान्तों में समानता है। इस पर अनुसंधान की क्रमिक आवश्यकता है।

आयुर्वेद की विद्या अलग है। वह भी यज्ञ से सम्भव है। शरीर का विज्ञान आयुर्वेद के नियमानुसार है। व्रहमाण्ड में सौम्य और अग्नि के आधार पर दिन रात, सूर्य, चन्द्रमा वने हैं। विद्युत भौतिक अग्नि तथा जल पर शरीर की विपरीत क्रियाशीलता है। शरीर चन्द्र, सूर्य, अग्नि, सोम नाड़ीयों से सम्वन्धित है।

वायें स्वर को इडा या चन्द्र नाड़ी, दायें को पिंगला अर्थात् सूर्य नाड़ी कहते हैं। जब दोनों समान होती है तो सुषुम्ना कहते हैं। दिन में जव सूर्य की गर्मी होती है तो शरीर की चन्द्र नाड़ी चल कर सहन करने की क्षमता देती है। तथा रात के शीत वातावरण में सूर्य नाड़ी उसके सहने की क्षमता वनाती है। यह आरोग्यता के लक्षण हैं और इसका विपरीत रोग की पहचान है। उसी प्रकार पित्त, वात और कफ समान रहते हैं तो मातढ़िल है, असम रहने पर रोगी होना पड़ता है। चिकित्सा यही है कि घटे को वढ़ा देना और वढ़े को घटाकर समान कर देना। यही कार्य किसी भी पैथी का है। दोनों प्रक्रिया कार्य कर सकती है जिसकी वुद्धि जिसमें उपयुक्त हो यह तो रही पौधों की बात। यह चिकित्सा व्यक्तिगत हो सकती है इसमें व्यक्ति कल्याण तो है पर खर्चीली ज्यादा है। होम्योपैथी में खर्च तो कम है पर निदान में न तो मशीन है, न नाड़ी, केवल लक्षण ही सहायक हो सकता है।

यज्ञ चिकित्सा व्यक्ति से भी रोग दूर करती है तथा पर्यावरण से भी रोगाणु को मारती है। अतः यह समष्टि प्रक्रिया है। जितनी औषधियां आसव, अरिष्ट द्रव अणुओं में है सूक्ष्म किये जा सकते हैं। और दृष्टव्य होते हैं। पर अग्नि छेदक भेदक होने के नाते इसके द्रव्य घृत आदि परमाणुओं में परिणित हो जाते हैं। जो अदृश्य हो जाते हैं। जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है उतनी ही प्रभावी तथा विस्तारयुक्त हो जाती है। जितना विस्तार होता है उतने क्षेत्र के जीव जन्तु मनुष्य पक्षी औषधि वनस्पति पर्यावरण को प्रभावित करती है। सूक्ष्म गति, सूक्ष्म रोगाणु चाहे कितना ही सूक्ष्म होगा पर संयोगज होगा। संयोगज में आकाश रहता है अतः उसे भेदना आसान है यह कार्य यज्ञ से सम्भव हो सकता है। साथ ही यह भी गुण होता है कि दवा अधिक या कम होने पर हानिकारक या प्रभावहीन हो सकती है। पर यज्ञ द्वारा छोड़ा गया तत्व वातावरण में कितना भी

अधिक हो रोगी अपनी रोग की क्षमता भर ही शोषण कर सकेगा। न अधिक न कम, अधिक से अन्य जीवों को लाभ हो सकता है। जिन्हें ज्ञात हो या अज्ञात हों। क्योंकि सभी प्रकार के रोगाणु उत्पन्न हो, रोगी के स्वशन, मल, मूत्र, कफ, थूक आदि के सहारे वातावरण में आते हैं। वहां अपने उपयुक्त स्थान द्वारा विस्तार को प्राप्त होते हैं। और इस प्रकार अन्य जीवों को प्रभावित करते हैं। पर यज्ञ द्वारा वातावरण में ही रोगाणु नष्ट होने लगता है। अतः मरीज को दवा की आवश्यकता कम होती है तथा सम्पूर्ण आरोग्यता को प्राप्त होता है।

साथ ही यज्ञ में अवरोधन क्षमता भी होती है। अनेक प्रकार की औषधियों की वजह से जीवों के रक्षण तत्वों में अवरोधन क्षमता बढ़ जाती है। जैसे टी. बी. के रोगाणु तेजी से बढ़ते हैं। सरकार इसके लिए उन्मूलन अभियान चला रही है तथा मुफ्त इलाज (डाट पद्धति से) कर रही है। पर निर्मूल कभी कर ही नही सकती। अगर इसके साथ यज्ञ को जोड़ दिया जाए तो यह सम्भव हो सकता है। गुग्गल में इन रोगाणुओं को नष्ट करने की अनुपम क्षमता होती है। डा. कुन्दन लाल आर्य ने 'यज्ञ द्वारा रोग चिकित्सा पुस्तक में रोगानुसार तीन प्रकार की यज्ञ औषधियां लिखी हैं। इससे रोगी तथा सहयोगी चिकित्सक भी पूर्णतः सुरक्षित रहते हैं।

फ्रान्स के ट्रिलवर्ट ने जलती हुई अग्नि में शक्कर जलाने से वायु को शुद्ध करने की इतनी शक्ति है कि चेचक हैजा जैसी बीमारियों को ठीक करने की अद्भूत क्षमता को पाया। परीक्षण से मुनक्का और किसमिस जलाने से टाइफाइड के कीटाणु ३० मिनट में नष्ट होते हैं। अनेक प्रयोग से हल्दी और शक्कर जलाने से सर्दी, जुकाम और बुखार में तुरन्त प्रभाव होता है। इसका प्रयोग मैंने स्वयं किया है।

डा० सत्यप्रकाश जी जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर थे। अग्नि होत्र पर विज्ञान की दृष्टि से हवन सामग्री का विश्लेषण करते हुए यह पाया कि उसमें जैसे फार्मेल्डिहाइड गैस महान शक्तिशाली कीटाणुनाशक तत्व है जिसका जंल वाष्प से अधिक प्रभाव पड़ता है। इसी से जल सेचन तथा घड़ा का विधान है। सांथ ही सोम या हर प्रकार के द्रव्य में जल तत्व होता है।

पर्यावरण और अन्तरिक्ष में भी जल अणु सदैव विद्यमान रहते हैं। इसी से तो कहा है कि जल गया पर कहां? अन्तरिक्ष में। यही औषधियों का सार जो चन्द्रमा द्वारा अमृत रूप में मिला वायु वर्षा द्वारा पुनः पृथ्वी से जड़ों द्वारा औषधियों को प्राप्त हुआ वही द्रव्य रूप में से अग्नि में जल सार रूप में जल निकला वह सोम ही है। जो पुनः अन्तरिक्ष में जाकर उसी गुणवत्ता जनस्वास्थ्य बढ़ाने के बाद पृथ्वी पर औषधियों व जीवों को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तरिक्ष में सोम बरस कर औषधियों वनस्पतियों में तथा पुनः जीवों को प्राप्त होना, यह एक कल्याणकारी प्रक्रिया है। प्रकृति परिणामी है, उसमें परिवर्तन स्वतः होते रहते हैं और उसका नियन्ता परमात्मा ही है जो एक क्षण भी निष्क्रिय नही हो सकता। पर यह यज्ञ मनुष्य के अधीन है जबकि आयुर्वेदज्ञ ब्रह्मा को होना चाहिए। जिसे इस प्रकार की ऋतु कालीन औषधि तथा रोग निवारक औषधि का ज्ञान हो, साथ ही वह परोपकारी तथा समर्थ हो और जनता में ऐसे विद्वान तथा यज्ञ में श्रद्धा हो तो उसे आधिकाधिक लोककल्याण भावना हो और उसे आदिदैविक आदि भौतिक तथा आध्यात्मिक त्रय तापों से बचाया जा सकता है। ऐसा विद्वान ब्रह्माण्ड की विषमताओं का अच्छी प्रकार से निवारण कर आरोग्यता प्रदान कर पिण्ड और ब्रह्माण्ड का सामंजस्य कर सकता है। तथा जनशक्ति बढ़ा कर भौतिक उत्थान सुवृष्टि, सुकाल सिद्ध कर सकता है।

इसके लिए अभी बहुत कुछ करना है। एक तो वैज्ञानिक केवल अन्तरिक्ष पर ही दृष्टि लगाये हुए हैं। उन्हें केवल चमत्कार की आवश्यकता है। यहां तक सोच रहे कि अन्तरिक्ष में ही अस्त्र शस्त्रों का जखीरा इकट्ठा किया जाए जिससे विनाशकारी क्रियाएं केवल विचार से हो, ऐसे आतंकवादी सोच वाले समाज में हम जी रहे हैं। और इसके आसार आतंकवाद के रूप में सारे विश्व पर छाये हुए हैं। इन्हें आज अगर ऐसा साधन मिल जाए तो किसी को सृष्टि में नहीं रहने दें। जो अपने लिए बर्बाद करता है उसकी तो कुछ सीमा है और स्वयं का भी तो भय बढ़ा रहा है। पर जो अपने को बर्बाद कर निष्प्रयोजन सबको बर्बाद करने में अपनी खुशियां तथा जन्नत प्राप्त कर रहा है। ऐसे व्यक्ति को कौन रोके।

फिर भी आशावादी होना चाहिए। हमेशा शिव संकल्प ही करना चाहिए

यही परमात्मा का संदेश तथा वेद ज्ञान भी है। अतः हमारी सोच बदल कर रक्षात्मक हो जावे तो मानवता का कल्याण हो तथा शान्ति अमन चैन की स्थापना हो जिससे यज्ञ की उपादेयता बढ़ जाए। इसके शोध द्वार उपकार की भावना, कर्म, परमात्मा तथा वेद ज्ञान से श्रद्धा है। और प्रयोगशालाओं की खोज की वृत्ति बदल जाए। सभी में परोपकार की भावना बढ़ जाए आपसी सम्बन्ध व प्रेम गहरे हो जाए। यही कार्य आज की सोच व जरूरत है। हर एक देश अपने पड़ोसी से सम्बन्ध सुधारने तथा वैज्ञानिक सामाजिक, व्यापारिक आदि किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य चाहता है।

आज वैज्ञानिक विकास से सारा विश्व एक परिवार तो हो चुका है। अतः पिछड़े का विकास तथा सहानुभूति रखना, परस्पर सम्मान पूर्वक मित्रता, बड़ों का अनुकरण तथा सम्मान करना एक दूसरे का कर्तव्य बनता है। यही उद्देश्य यज्ञ का है। भौतिक सुख, आरोग्यता मानसिक यज्ञ से शान्ति प्रेम, सद्भावना तथा बौद्धिक यज्ञ से समयानुसार एवं वर्तमान विश्व समस्या का समाधान हो। यही वैदिक संदेश, भौतिक, मानसिक व बौद्धिक यज्ञ का उद्देश्य तथा दर्शन है इसको सबसे बड़ी चुनौती आतंकवाद या आसुरी वृत्ति से है। जो सभी काल में होता आया है। आतंकवाद से सुरक्षा तकनीक बौद्धिकता तथा विज्ञान के विकास का कारण हो सकता है। क्योंकि बिना आवश्यकता किसी वस्तु का आविष्कार नही होता है। जो बड़े शक्तिशाली देशों के स्वार्थ समाधान का साधन हो सकता है।

ऋतुकालीन यज्ञ में औषधियों का चयन मंत्रों का विनियोग तथा संस्कारों का महत्व आदि विषय विचारणीय है।

यज्ञ से पर्यावरण का शोधन कैसे होता है। यह प्रक्रिया भौगोलिक प्रक्रिया से मिलती जुलती है। जैसे जो स्थान अधिक गर्म हो जाता है वहां की वायु हल्की हो ऊपर उठ जाती है और जहां वायु भारी है वहां से रिक्त स्थान को भरने चल पड़ती है। इससे अन्धड़ या चक्रवात आते हैं। इसी प्रकार यज्ञ की भी विद्या है।

जैसे दिल्ली को ले वहां वहुत घनी आवादी है उसकी गंदगी और श्वसन क्रिया कलकारखाने, चलने वाले वाहन जिनकी संख्या लगभग ३२ लाख है और वाहर से आने वाले वाहन उन सव का धुआं। ऐसा अनुमान है कि एक वार दिल्ली पार करने में श्वसन क्रिया में ६ सिगरेट के वरावर धूम्र फेफड़ों के अन्दर प्रविष्ट होता है। साथ ही ४५ फीट प्रदूषित वायु की परत वहां ऊपर जमी है। यज्ञ इसमें क्या कर सकता है, जहां यज्ञ होता है उसके ऊपर की वायु गरम हो हल्की होने से ऊपर ही वड़ी तेजी से उठती है तथा जहां तक जाती हे उतने रोगाणुओं को नष्ट करती है। दुर्गन्ध को दूर करती है। हल्की होकर ऊपर उठाती जाती है। रिक्त स्थान को भरने प्रदूषित और मोटी भारी वायु आती है और पुनः शुद्ध होकर हल्का करके उठाती रहती है। इस प्रकार अगर इसकी फोटोग्राफी की जाए तो वड़ी तेजी से यह क्रिया होती है। पर जब तक कि यज्ञ होता रहता है तभी तक अतः वृहद यज्ञ या क्षेत्रीय यज्ञ कर इस प्रदूषित मोटी वायु का शोधन हो सकता है। यह शुद्ध हल्की वायु ऊपर जो गुणों से युक्त हो जनसंख्या के वाहर से भारी वायु पर दबाव बनाती है। इस प्रकार उस प्रदूषित वायु का सफाया हो सकता है। फिर प्रदूषित होती रहेगी।

यह शोध की जरूरत है कि कितनी वायु नित्य प्रदूषित होती है और अनुपात में कितने यज्ञ का अनुष्ठान संतुलन बना सकते हैं। इसलिए ही हमारे यहां दैनिक यज्ञ का बहुत महत्व है जो नित्य प्रत्येक घर में हो। इसी को शायद होम भी कहा गया है। अगर ऐसा सम्भव नही हो पाता तो प्राचीन भारत में राजा का यह कर्तव्य होता था कि वह अनेक यज्ञों का अनुष्ठान कर समस्या का समाधान करें। आज प्रदूषण निवारण पर सरकार खर्च तो कर रही है। कारखानों को अपशिष्ट का उपचारीकरण (हटाना), बिजली का प्रयोग, वृक्षारोपण, गैस का प्रयोग, वृक्षारोपण पर इसकी सहायता विधा में महत्वपूर्ण विद्या यज्ञ की है।

यह महत्वपूर्ण यज्ञ ही है, जिसे सरकार नही समझती है। यज्ञ अमेरिका में अग्निहोत्र विश्वविद्यालय बना अवश्य कीटनाशक दवाओं के स्थान पर यज्ञ का प्रयोग अन्न की गुणवत्ता में सफलता प्राप्त की है। उसी बाजार में जहां लोग कहते हैं कि यज्ञ तथा कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से पैदा हुए अन्न की

गुणवत्ता में काफी अन्तर है।

कीटनाशक दवायें तथा यज्ञ-

आज प्रत्येक अन्न के उत्पादन, भंडारण आदि में विषैली दवाओं का ही उपयोग हो रहा है। इससे हानिकर कीट तो मरते ही हैं साथ ही अवरोधक कीट तथा पक्षी आदि भी मरते हैं। अतः विस्तार के अवसर अधिक व अवरोधक के नष्ट होने की सम्भावना बढ़ गई है। कहा जाता है कि चाइना में गौरैया पक्षी अधिकतर कीड़े खाता है। पर न मिलने पर अन्न के दाने भी खाता है। चीन की फसलों के नुकसान का आंकड़ा लगाया कि ये पक्षी २० प्रतिशत फसल नुकसान कर देता है। अतः इसे मार दिया जाए। इसका परिणाम यह हुआ कि कीट इतना बढ़ गये कि २०-२५ प्रतिशत से अधिक की हानि की संभावना बढ़ी और उन्हें, इस पक्षी को पालना तथा संरक्षण करना पड़ा।

इस पर सरकार ध्यान नहीं दे रही है। विषैली कीटनाशक दवाओं से परजीवी कीट तथा पक्षी जहर से मरे कीटों को खाकर मरते चले जा रहे हैं। और उनकी संख्या घटती चली जा रही है। हानिकर कीटों की विषशामक क्षमता एवं संख्या भी बढ़ रही है। इस प्रकार विषैली दवाओं का अत्यधिक प्रयोग होने से वह जहर फसल से उसके डंठल भूसे द्वारा दुधारू और अन्य जानवरों तक पहुंच रहा है। इससे उनके घी, दूध तथा मांस में भी जहर का असर आ रहा है। साथ ही वर्षा से घुल कर वे दवायें पृथ्वी पर जाती हैं। इससे उत्पन्न होने वाली फसल वनस्पति जड़ों द्वारा उस विष को खींच कर विषैली बनती जा रही है। अतः देखा जाय तो पृथ्वी पर उगने वाले खर पतवार से अन्न फल सब विषैले हो रहे हैं जिससे पशुधन तथा प्राणी सभी असुरक्षित हैं। इसके लिए कोई दूसरा उपचार करना होगा। वह यज्ञ ही सीखाता है।

पिपराइच (सीकर) के वृष्टि यज्ञ से वर्षा हुई तो ठीक हुई थी तथा फसलों पर कीटनाशक दवाओं का भी बहुत मामूली प्रयोग हुआ। क्योंकि गाय का घी स्वयं अपने आप में विषनाशक है। साथ ही जीव प्राणिओं के रक्षक तत्वों का पोषक और स्वास्थ्य वर्धक और अन्न फल की गुणवत्ता बढ़ाने वाला भी सिद्ध होता है।

कीटनाशक दवाओं का अवरोधक भी है। हमने देखा बसन्त ऋतु के बाद आम के बौर और लाहा (सरसों) में चिपचिपा रस पैदा होता है। जिससे उसमें नुकसान करने वाली अनेक फफूदियां पैदा हो फसल को नष्ट करती है। यह बादल आने तथा पूर्वी हवा के प्रभाव से होता है। उस समय वर्षा की कोई जरूरत नही। ऐसे में वृष्टि अवरोधक पदार्थ डालकर यज्ञ कर दें तो दूसरे दिन ही बादल छंट जाते हैं तथा पश्चिमी वायु का असर हो जाता है और यह अमूल्य फसल बिना कीटनाशक दवा के बच जाती है। एक स्थान पर यज्ञ में अगर पांच दिन ३०० आहुतियां दी जाँय तो ३० वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल सुरक्षित हो सकता है। और अगर वृहद यज्ञ का रूप दे दिया जाए तो पश्चिमी हवा का प्रभाव पन्द्रह दिन तक कर दिया जाय तो पूरी फसल बहुत मामूली रखरखाव से बच सकती है। यह क्रिया यज्ञ द्वारा बहुत ही आसानी से की जा सकती है।

मेरे पास कोई प्रयोगिक साधन तो नहीं पर अगर फसलों पर ओले पाला आदि के प्रभाव का कुछ समय पहले ज्ञान हो जाय तो यज्ञ द्वारा रोका जा सकता है। यह यज्ञ के औषधि परिवर्तन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। तथा मौसम विभाग काल स्थान आदि पहले से निश्चित कर दे तो यह अनुमानतः सम्भव दिख रहा है। इस पर प्रयोग करने की जरूरत है इस प्रकार अनेक आपदाओं तथा फसलों को जहरीली दवाओं से बचा, उनको स्वास्थ्यकर बनाया जा सकता है। क्योंकि यज्ञ द्वारा कीट नाशक दवायें औषधि दी जायेगी वह पर्यावरण मे ही उस कीट की कार्य क्षमता निष्क्रिय करना प्रारम्भ कर देगी। उनकी हानि भी करेगी। इस प्रकार यज्ञ जनकल्याण,फसल रक्षा तथा अवरोधक तत्वो की रक्षा में वरदान बन सक़ता है। इस पर अवश्य विचार करें।

मन्त्र– मन्त्र से तात्पर्य विचार से है। इन मन्त्रो के आधार पर उस रोग या समस्या के समाधान की मन्त्र प्रेरणा है। अर्थात यज्ञ की औषधियों का प्रयोग कर रोग का नाश तथा समस्या का समाधान कर सकते हैं। उन मन्त्रो को उस कार्य में विनिमय क़र देने से वह ज्ञान भी उस कार्य के साथ जुटा होगा। तथा मंत्र का अर्थ समझने से मन में दृढ़ता भी होगी। जो सत्य का रूप धारण कर सकती है । आज चिकित्सा में भीं मन रोग ही ज्यादातर है या एलर्जी है। रोग

के कारण में मन स्थिति को चिकित्सक जान जाय तो अपने निदान मात्र से रोगी में दृढ़ता ला देता है , साथ ही वही चिकित्सक का विचार मन्त्रों से भी ध्वनित होता है तो सोने में सुगन्धी बन जाती है। अतः मन्त्र के साथ वह चिकित्सक विधि तथा रोग पर बहुत समय तक संसार में अपना लोक कल्याणकारी आस्तित्व रख सकता है। विना मन्त्र के अपनी प्रतिभा से कल्याण कर दे, पर वह कार्य उसी के साथ समाप्त हो जायेगा। पर मन्त्र और विनियोग में उसके बाद भी जिन्दा रह सकता है। पर यह सावधानी अपेक्षित है कि कहीं विनियोग का दुरूपयोग न हो तथा मनमाने निष्प्रयोजन विनियोग न किया जाये।

यज्ञ द्वारा मन्त्रों के पठन पाठन भी होते रहते हैं। जिससे कि यह ज्ञान बना रहता है। यह एक प्रकार से देखें तो हमारा धार्मिक ग्रन्थ होने के बाद भी बहुत से लोगो को इसका दर्शन भी नही हुआ। अतः यज्ञ एक प्रकार से चलती फिरती प्रचार पाठशाला भी है। इसके विचार तथा सार्थकता केवल भौतिक यज्ञ से ही नहीं बल्कि अधिक पदार्थ ज्ञान उपासना से है। आज आध्यात्म हमारा भटक चुका है। वेद के अभाव में मनमानी स्तुती प्रार्थना उपासना योग साधन तथा भ्रान्तियों से भरा है कि वैदिक ज्ञान ही लुप्त हो गया है। और मनमाने परमात्मा, देवता, सम्प्रदाय, मान्यतायें कार्य कर रही हैं। जो विद्वानो को भी भ्रमित कर रहीं हैं। इसका उपचार केवल वेद प्रचार ही हो सकता है। अन्य कोई भी विकल्प नहीं। इसी ज्ञान से नास्तिकता का भी लोप हो सकता है। श्रद्धा आस्तिकता का कारण है। यह सत्य से बनी है। सत्य के अभाव में अश्रद्धा तथा सत्य से ही श्रद्धा सम्भव है। वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है अतः जानने पर अश्रद्धा या नास्तिकता स्वतः ही चली जायेगी और सारी विघटनकारी भ्रान्तियाँ मिट जायेंगी। इस दृष्टि से मन्त्र द्वारा यज्ञ करना कोई बुरा नही है। पाठ भी होता प्रचार भी होता और बिना पढ़े लिखे लोगों तक यह ज्ञान पहुँच सकता है। इसी से महर्षि तीसरा नियम लिखते हैं कि "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है"। वेद का पढ़ना पढ़ाना शिक्षित लोगो के लिए और सुनना सुनाना अनपढ़ के लिए सभी आर्यो का परम धर्म है। वेद मानव संविधान है जो समाज के रोम-रोम में व्यवहृत है। वेद उसकी सार्थकता निरर्थकता सत्यासत्य,धर्माधर्म,न्यायान्याय का निर्णायक है। असत्य को त्यागना तथा सत्य को धारण करना ही मानवता है। यही वेद का

संदेश भी है।

संस्कारिकता - संस्कार वहुत व्यापक शब्द है। इसके अर्थ सम्यक प्रकार से अच्छे गुणों को आधान करना है। सभी लकड़ी जंगल की है पर बढ़ई इसे संस्कारित कर मेज कुर्सी आदि कितनी उपयोगी वस्तुएं बना देता है। इसी प्रकार बच्चों को भी समय-समय पर अच्छे प्रेरणाप्रद मोड़ प्रोत्साहन,उत्साह से उसके जीवन में बहुत परिवर्तन लाया जा सकता है। ये संस्कार भले या बुरे पड़ जाते हैं। जन्म-जन्मान्तर तक चित्त(कारणशरीर) में उनका प्रभाव देखने को मिलता है। अविद्या संस्कार दोष से ही इन्द्रियों में दोष आ जाते हैं। यह गलत संस्कार का ही दोष है इन्द्रिय दोष से भी गलत संस्कार बनते है। अतः इन्द्रिय संयम पर विशेष जोर दिया गया है। ये एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार औषधि याँ गुणकारक तो होती पर वैसे हवन करना लाभकारी नहीं होता है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ऋषि ने संस्कारित हवन सामग्री से हवन करने यों तो घृत में संस्कारित करना हर हालत में उपयोगी है पर अभाव तथा आवश्यकता अनुसार उसे तिल के तेल, नारियल के तेल वृष्टि अवरोधक तथा फसल,फल कीटनाशक में कडु तेल से करना चाहिए। वृष्टि यज्ञादि में गोदुग्ध या अधिक गर्मी में भी कर सकते हैं। अनुमानित फसलों में कीटनाशक दवाओं में नीम का तेल,फली,फूल आदि का उपयोग हो रहा है। जो विषैला भी नही है तथा हानिकारक भी नही है। उसी प्रकार यज्ञ में इसकी समिधा,फलों को सामग्री में डाल सकते हैं। और तेल से संस्कारित कर गिलोय चिरायता गुम्ब(अमृत कलश) आदि औषधियों को अत्यन्त प्रभावी बना सकते हैं समिधा तथा तेल,घृत द्वारा इसमें अगर गोघृत काफी सुलभ हो तो, यह अपने में स्वयं विषनाशक तथा रोगनाशक है और सामग्री का योग पाकर इसका प्रभाव कई गुना बढ़ जायेगा। यजुर्वेद का मन्त्र कहता है-

पूर्णा दर्वि परापत सुपुर्ण्या पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहाद इषमुर्ज शतक्रतने।।”

अर्थ- अगर सामग्री संस्कारित तथा घृत आदि मन्त्रानुसार दिये जाते तो परमात्मा पूर्ण करनें वाले को सुपूर्ण करता है। जिससे ऊर्जा और अन्न से

सतगुणा कर देता है। इसका ताप्तर्य उस वस्तु की संस्कारितकता तथा मन्त्रों का ध्यान देकर हम तेजस्वी तथा धनधान्य से परिपूर्ण हो सकते है। निर्विघ्नता से प्राप्त कर सकते हैं।

भैषज्य व्यवस्था- ब्रह्माण्ड को गहराई से देखा जाय तो इसकी पूर्णता समानता के बिन्दू पर निहित है। चाहे पिण्ड हो,ब्रह्माण्ड हो, औषधियाँ हों, वनस्पतियाँ हों। सोम और अग्नि की समानता पर ही निर्भर है। विषमता हीं दुःख का कारण और उसी के लिए वैदिक व्यवस्था की जरूरत होती है। यह कार्य औषधि, रासायनिक क्रिया, योग साधन आदि के साथ-साथ यज्ञ का कम स्थान नहीं है। और यह क्रिया सृष्टि परयन्त चलने वाली है। अन्तरिक्ष गुणवत्ता तथा क्रियाशीलता से अणु(सेल्स) से वृष्टि का सृजन तथा क्षय से शोधन कार्य बराबर होते रहता है। प्रकृति परिणामी है। जन्म का मरण, उत्थान का पतन अवश्यम्भावी है। पर पतन को और मरणासन्न की रक्षा सम्भालना ही कर्त्तव्य और यह सुकर्त्तव्य ही धर्म भी है इसी की रक्षा का आदेश वेद द्वारा परमात्मा करता है और यह कार्य सबसे जेष्ठ और श्रेष्ठ प्राणी होने के कारण यही जिम्मेदार है। इस जिम्मेदारी को ही नैतिकता कहते हैं।

सृष्टि मरणधर्मा है। मरण का कारण पतन, पतन को रोकने के लिएं स्वाध्याय, सत्संग, वैद्य, दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, सारे ज्ञान विज्ञान इसी उत्थान में लगे हुए हैं। पूर्ण सफल होनां तो असम्भव है। क्यों कि मनुष्य अपूर्ण है। अतः इसका ज्ञान भी अपूर्ण है। इसलिए पूर्ण सफलता तो नहीं, पर अवरोध हो सकते हैं। पूर्ण तो परमात्मा ही है।

परमात्मा ने पार्थिव शरीर को ही सभी प्रकार के सुख-दुःख, शान्ति, मोक्ष का साधन बताया है तथा उसकी रक्षा हेतु यज्ञ का विधान दिया, सारे वर्ष को विसर्ग और आदान काल में बांटा है। और यह छः ऋतुओं में परिणित है। ऋतुए-

१ - वसन्त-चैत्र, वैशाख २ - ग्रिष्म-जेष्ठ, आषाढ़
३ - वर्षा-श्रावन, भाद्र पद ४ - शरद ऋतु-आश्विन, कार्तिक
५ - हेमन्त ऋतु-मार्ग शीर्ष, पौष ६ - शिशिर-ऋतु-माघ, फाल्गुन

ये छः ऋतुयें हैं। इसके अनुसार आहार व्यवहार करना हीं स्वास्थ्यकर होता है और इनके सन्धिकाल में रोग की उत्पत्ति होती है। उसे ठीक करने के लिए मन्त्र आया है। "भैषज्य यज्ञा वा एते तस्मात ऋतु सन्धिष्टु प्रयुज्यन्ते" औषधियों से ऋतु की सन्धि में यज्ञ करना चाहिए।

(वर्ष) सम्बत्सर के विभागानुसार इसे आदान काल ऋतुएं बनायी गयी है। शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म में सूर्य,उत्तर दिशा में गमन करता है । इसे आदान काल कहते हैं। वर्षा, शरद और हेमन्त ऋतुओं में सूर्य दक्षिण दिशा में गमन करता है। इसे विसर्ग काल भी कहते हैं। आदान काल में·सूर्य बली होता है। रूक्ष वायु बहती है तथा अग्नेय तत्व प्रधान होता है। विसर्ग काल में चन्द्रमा प्रबल होता है। वायु नम होती है चन्द्रमा अपनी किरण से सारे विश्व को आप्लावित(तृप्त) करता है। इसलिए इस विसर्ग काल को सोम्य काल कहते हैं।

आदान काल में सूर्य किरणों द्वारा स्नेहभाग(जलीयांश) शोषण करता है जिससे शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म वायु में बहुत रूक्षता हो जाती है। इससे रूक्ष रस की वृद्धि कटुतिक्त और कषाय के उत्पन्न होने से शारिरिक दुर्बलता होने लगती है। वर्षा, शरद, हेमन्त में, विषर्ग काल में मेघ, वायु और वर्षा तथा आर्द्रता में आदान काल का रूक्षपन समाप्त हो जाता है। इससे अम्ल लवण मधुर (स्निग्ध) रस का संचार से स्वास्थ्य तथा स्वभाव में बदलाव आने लगता है जीवन सौम्य और सरस होने लगता है।

दुर्बलता - वर्षा ऋतु-श्रावन,भाद्रपद	ग्रीष्म ऋतु -जेष्ठ,अषाढ़
मध्यम - शरद-आश्विन, कार्तिक	वसंत ऋतु - चैत,वैशाख
उत्तम - हेमन्त-अगहन पौष	शिशिर ऋतु - माघ, फाल्गुन

ये स्वास्थ्य के उत्तम, मध्यम और अधम (दुर्बल) ऋतुओं का प्रभाव है। तथा ये छः रस है -रूक्षरस, कटुतिक्त और कषाय स्निग्ध, अम्ल,लवण मधुर शीतवीर्य उष्णवीर्य औषधि का चयन होता है और रस के आधार पर सेवन द्वारा स्वास्थ्य वर्धक होता है। अतः आयुर्वेदयज्ञ ब्रह्मा को ऋतुसंधि काल के अनुसार रूक्ष और स्निग्ध रसयुक्त औषधियों का सेवन कर आरोग्यता तथा वातावरण का संतुलन बनाना चाहिए। छः ऋतुओं का विधान सामवेद के एक मन्त्र में आया है।

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु कल्पः।
सा० पू० ६१६ मन्त्र

वर्षाष्यनुं शरदो हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्य।।

बसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त शिशिर सभी अवश्य ही रमणीय है अथर्ववेद का मन्त्र है -

ग्रीष्मस्त्रे भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त्रः शिशिरो वसन्ता।
ऋत वस्ते विहिता छायनी अहो रात्रे पृथ्वी नी दुहाताम।।
अ० १२/१/३६

हे पृथ्वी! परमात्मा ने तेरे लिए ही ग्रीष्म आदि ऋतुयें बनायी है। इस प्रकार तेरे लिए ही सब ऋतुयें वर्ष और दिन हैं। हमारे लिए उत्तम सुख और कल्याणकारी पदार्थ दें। करूणा कर भगवान ने सृष्टि रचना कर उसे वसन्त का रूप दे दिया था।

बसन्त का अर्थ है वसनीय। सृष्टि को वसनीय बनाने के लिए उसे सम्पूर्ण औषधि वनस्पति का पूर्ण विकाश होना आवश्यक था अतः सृष्टि का विकाश पूर्ण विकसित रूप से हुआ अतः यह निश्चित है कि सृष्टि का आरम्भ वसन्त काल से हुआ चैत, वैशाख दो मास में अतः चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से हुआ। अगर ऋतुओं के विषय में विशेष वर्णन तथा कर्तव्य को कृपया यजुर्वेद अध्याय २३ का २३ से २८ मन्त्र तथा अध्याय १३ का २५से ३० तक मन्त्र देखें।

औषधि चयन -

(१) वसन्त ऋतु : १-छरीला २-तालिस पत्र ३-पत्रज ४-मुनक्का ५-लज्जावती पंचांग ६-शीतलचीनी ७-कपूर ८-देवदार ६-गिलोय १०-अगरतगर ११-केशर १२-इन्द्रजव १३-गुग्गुल १४-चन्दन तीनो १५-जावित्री १६-जायफल १७-पुष्कर मूल १८-हल्दी १६-कमल गट्टा २०-मजीठ वन कचूर २१-दालचीनी २२-गूलर की छाल २३-तेजबल २४-शंखपुष्पी २५-चिरायता २६-खस २७-गोखरू २८-खांड़ २६-गोघृत

हो सके तो समिधा सभी की हो।

(२) ग्रीष्म ऋतु - १-सुरा या तालपर्णी २-वायविडंग ३-कपूर ४-चिरौंजी ५-नागर मोथा ६-पीला चन्दन ७-छरीला ८-निर्मली ९-सतावर १०-खस ११-गिलोय १२-धूप १३-दालचीनी १४-लवंग १५-गुलाबफूल १६-अगरतगर १७-तुम्वर १८-मीठी सुपारी १९-तालिस पत्र २०-जटामासी २१-नेत्रवाला २२-पद्माख २३-दारूहल्दी २४-मजीठ २५-कमरकस (ढाकगोंद) २६-केशर २७-इलायची बड़ी २८-उन्नाव २९-आमला ३०-खांडवूरा ३१-गोघृत

(३) वर्षा ऋतु - १-गुग्गुल २-अगरतगर ३-इन्द्रजव ४-धूप ५-देवदारू ६-राल ७-जायफल ८-गोलागरी ९-तेजपत्र १०-कपूर ११-बेलगिरी १२-जटामासी १३-छोटी इलायची १४-वच १५-गिलोय १६-तुलसी १७-वायविडंग १८-चन्दन श्वेत १९-नागकेशर २०-चिरायता २१-छुहारे २२-शंखाहुली २३-मोचरस २४-नीम के पत्ते २५-गुम्ब २६-अजवाइन २७-खांड़ २८-गोघृत २९-पलास का फूल ३०-धाय का फूल

समिधा ढांक की उत्तम होती है।

(४) शरद ऋतु - १-चन्दन (तीनो) २-गुग्गुल ३-नागकेशर ४-इलायची बड़ी ५-गिलोय ६-चिरौंजी ७-गुलर की छाल ८-सरसो ९-दालचीनी १०-कपूर कचरी ११-मोचरस १२-पित्तपापड़ १३-भारंगी १४-इन्द्रजव १५-ओंगा १६-असगंध १७-शीतलचीनी १८-जायफल १९-पत्रज २०-चिरायता २१-केशर २२-किसमिस २३-जटामासी २४-तालमखाना २५-सहदेवी २६-धान की खील २७-गुम्ब(अमृत कलश) २८-कपूर २९-गोघृत ३०-खांड़

समिधा ढाक की उत्तम होती है।

(५) हेमन्त ऋतु - १-कूट २-मूसलीकाली ३-घोड़ा वच ४-पित्तपापड़ ५-कपूर ६-कपूर कचरी ७-गिलोय ८-पटोल पत्र ९-दालचीनी १०-भारंगी ११-सौंफ १२-मुनक्का १३-गुग्गुल १४-अखरोटकी गिरी १५-पुष्कर मूल १६-छुहारे १७-गोखरू १८-क्रौंच के बीज १९-बादाम २०-मुलहठी २१-कालातिल २२-जावित्री २३-लाल चन्दन २४-मुश्कवाला २५-तालिसपत्र २६-गोला २७-रासना २८-गोघृत २९-खांड़

इसमें आम या खैर की समिधा उत्तम है।

(६) शिशिर ऋतु - १-अखरोट २-कपूर ३-वायविडंग ४-इलायची बड़ी ५-मुलहठी ६-गिलोय ७-मोचरस ८-मुनक्का ६-रेणुका(समालु) १०-कालातिल ११-तज १२-चन्दन १३-चिरायता १४-छुहारे १५-तुलसी बीज तथा पत्ते १६-गुग्गुल १७-चिरौजी १८-काकड़सिंघी १६-सतावर २०-दारूहल्दी २१-पद्माख २२-क्रौंच के बीज २३-जटामासी २४-तुम्बुरु २५-राल २६-चिकनी सोपारी २७-गोघृत २८-खांड़

गूलर, बरगद की समिधा उत्तम

(७) सर्व ऋतु सामग्री - १-सफेद चन्दन का बूरा २-अगरतगर ३-गुग्गुल ४-जायफल ५-जावित्री ६-दालचीनी ७-तालिस पत्र ८-पानड़ी ६-लौंग १०-बड़ी इलायची ११-गरीगोला १२-आंवला १३-छुहारा १४-नागर मोथा १५-गुलाब फूल १६-इन्द्रजव १७-कपूर कचरी १८-किसमिस १६-वालछड़ २०-नागकेशर २१-सोपारी चिकनी २२-नीम की पत्ती या राल २३-खांड़ २४-गोघृत २५-चिरचिटा

❋❋❋

यज्ञ का महत्व

यज्ञ के महत्व को सभी ग्रन्थों ने स्वीकारा है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं।

यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकित्विषैः।
मुच्जते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मुकारणात्।।

अर्थात यज्ञ शेष खाने वाले को, सब पाप छोड़ देते हैं। पर जो केवल अपने निमित्त पकाते हैं, वे निरा पाप ही खाते हैं। इसलिए सारे जीवन को परोपकारार्थ बनाना ही याज्ञिक कर्म है। अतः इस भावना से जो धन भी कमाते तथा जीविकोपार्जन करते हैं उन्हे पाप छू भी नहीं सकते। गीता में कृष्ण इसी कारण कहते हैं कि-

सहयज्ञा प्रजा सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्टा ध्वमेषं वोऽस्तिवष्ट कामधुकं।।
३०/१०

अर्थात इसीलिए प्रजापति परमात्मा ने यज्ञ से प्रजा की सृष्टि की, ताकि हम यज्ञ कर्म करते हुए वृध्दि को प्राप्त करें। तथा यह हमारी सभी इच्छायें कामनायें पूर्ति करने वाली हों सृष्टि के सभी अवयवों सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, समुन्द्र ,नदी, नाले, औषधि व वनस्पति परोपकारमय यज्ञ में निरत हैं। अतः सबसे श्रेष्ठ, जेष्ठ होने के नाते हम भी यज्ञमय जीवन व्यतीत करके सभी पापों से छूट, भौतिक सुख स्वर्ग आदि तथा शुभकर्म का फल मोक्ष को प्राप्त करें। यजुर्वेद का मंत्र भी कहता है-

कस्त्वा विमुंच्चति स त्वां विमुंच्चति कस्मै त्वां।
विमुंच्चति तस्मै त्वा विमुंच्चति।

पोषाय रक्षसां भागोसि।। २/२३/

प्रश्नात्मक है - कौन सुख देने वाला यजमान मनुष्य उस यज्ञ को छोड़ देता है? उसको यज्ञ स्वरूप परमेश्वर भी त्याग देता है। यज्ञ करने वाला व्यक्ति किस प्रयोजन के लिए उस हवन सामग्री को अग्नि में छोड़ता है। जिससे सभी सुखों की प्राप्ति तथा सभी प्राणियों का पोषण भी होता है।
किन्तु जो पदार्थ सबके उपकारक यज्ञ में प्रयुक्त नहीं होता वह दुष्ट जनों के उपयोग करने योग्य होता है।

ईशा वास्यामिदं सर्वं यत्किं च जगत्यांजगत।
तेन त्यक्तेन भुंञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम।।

य० ४०/१

यह संसार या जगत जो गतिशील है, उसकी यावत पदार्थ है, उसकी रचना करने वाला तथा गति देने वाला परमात्मा स्थित है, इसलिए यह सब कुछ उस प्रभु का है। अतः त्यागपूर्वक केवल इसका भोग करो। लालच किसी वस्तु की मत कर। यह केवल साधन मात्र है। इस प्रकार दो मन्त्र भी यहीं कहते हैं।

कुर्वन्नेंह कर्माणि जिजी विषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेलेस्ति नकर्म लिप्यते नरे।।

अर्थ - हे मनुष्य याज्ञिक भावना से यज्ञ करते सैकड़ों वर्ष तक जीने की इच्छा करो तेरे लिए उत्तम मार्ग यहीं है, अन्य कोई नहीं। क्योंकि इस प्रकार कर्मों में मनुष्य लिप्त नहीं होते। वे याज्ञिक कर्म जिसमें लिप्त नहीं होता, वे मोक्ष प्रदाता भी होते हैं। उन्हे निष्काम कर्म या अशुक्ला, अकृष्णा कर्म भी कहा गया है।

ऋतुयें तीन प्रकार की होती हैं। उष्ण, शीत तथा सामान प्रभाव वाली । औषधियाँ भी तीन प्रकार की होती हैं।
प्रथम- उष्णवीर्य, जिसकी उत्पत्ति शीतकाल में होती है।
द्वितीय- शीतवीर्य जो उष्णकाल में होती है।
तृतीय- समान जो वर्ष पर्यन्त होती है। उसमें शीत और उष्ण दोनो सहने की

क्षमता होती है। इसी प्रकार फल, औषधि और अन्न का चयन करना स्वास्थ्य के लिए भी हितकर होता है तथा यज्ञ के लिए भी। ग्रीष्म तथा वर्षा में दोनो ऋतुयें अधम कोटि की हैं। जेष्ठ मास जो श्रेष्ठता के साथ धूल और तीव्र ताप से चर्मोत्कर्ष पर होता तथा आकाश को मलीन करने वाला है और पवित्रता करने वाला आषाढ़ मास है। इसमें श्रवणेन्द्रिय तथा दृश्येन्द्रिय से सावधान रहना चाहिए तथा रूद्र व्रह्मचारी की तरह प्राण अपान तथा व्यान को संयमित कर जल का अधिक उपयोग तथा शीत औषधियों का सेवन करें। वर्षा ऋतु श्रावण, भादो मास वर्षा के हैं। इसमें जठराग्नि मन्द हो जाती है। अतः स्वास्थ्य का विशेष ध्यान देना चाहिए। इसमें मच्छर आदि अनेक किट पतंग तथा रोगाणु भी होते हैं। अतः इसमें सावधान रहना चाहिए। इसमें आद्रा नक्षत्र में यज्ञादि कर्म वर्षा के लिए विशेष लाभकारी होते हैं। इसके बाद शरद ऋतु यह शर्दी वर्षा का संधिकाल है। इसमे स्वास्थ्य के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिए।

हेमन्त वहुत ही स्वास्थ्यवर्धक ऋतु है। अतः इसमें संयम कर बल और बुद्धि को अधिकाधिक विकसित कर अपना जीवन सुखी तथा समाज कल्याण करें।

शिशिर इसमें सर्दी कम तथा गर्मी बढ़ती है। स्वास्थ्य रक्षार्थ यम नियम का पालन तथा दस प्राण और वायु पर विशेष नियंत्रण कर ईश्वर स्तुती तथा सत शास्त्रों के अध्ययन में मन लगाना चाहिए तथा मानसिक विचारों को सम्भाल बल और बुद्धि का विकास करना चाहिए।

बसन्त- इसकी महिमा वेदों में बहुत है इसमें एक नवीन जीवन का संदेश है। पतझड़ आदि से सभी वृक्ष फल -फूल कोमल पत्तियों तथा फलों फूलों से लद जाते हैं। यहीं से सृष्टि बसने योग्य हुई थी। इसलिए सृष्टि सम्बत् चैत्र शुक्ल प्रारम्भ होता है। यह मधुरता का द्योतक है।

वृष्टि यज्ञ की सामग्री चयन -

१-गोघृत २-करील की समिधा ३-कस्तुरी ४-केशर ५-अगरतगर ६-श्वेत चन्दन ७-इलायची ८-जायफल ९-जावित्री १०-गोदुग्ध ११-चावल १२-गेंहूँ, जौ १३-उड़द १४-शक्कर १५-शहद १६-छुहारे १७-दाख

१८-गिलोय १६-वच २०-गोरखमुण्डी २१-छैलछवीला २२-नागर मोथा २३-गुग्गुल २४-गोलाआदिफल २५-मोहनभोग २६-चरू
वेद मन्त्रों का श्रद्धा पूर्वक उच्चारण।

अतिवृष्टि होने पर- घृत तथा सामान्य हवन सामग्री में पर्याप्त सरसों की खली, काली मिर्च आदि मिलाकर आहुति करने से वादल फट जाते हैं तथा छिन्न भिन्न हो जाते हैं। आहुति गायत्री मन्त्र से देते हैं। समिधा आम की होनी चाहिए ।

ग्रीष्म काल में अधिक यज्ञ करने से वर्षा समय पर होती है। इसके लिए मन्त्र अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड का पन्द्रहवां सूक्त देख ले। उन मन्त्रों से अधिकाधिक आहुतियां प्रदान करनी चाहिए।

वृष्टि यज्ञ का बहुत विद्वानों ने गलत अर्थ लगाकर इसे चमत्कार का रूप देना चाहते हैं। इस प्रकार के विचार करना या प्रकृति से खेल करना या क्षुब्द करना हर ह़ालत में हानिकारक सिद्ध होता है, वृष्टि यज्ञ का आयोजन एक दिन का नही है बल्कि वसन्त ऋतु में जब गर्मी पड़ने लगती है तभी से वृष्टि यज्ञ का आयोजन करना चाहिए। ग्रीष्म काल में जितना अधिक यज्ञ होता है उतना हीं समय से मानसुन आता है तथा अच्छी वृष्टि होती है। गर्मी के ऋतु में सूर्य की किरणे जल का संग्रह करती हैं। यज्ञ का प्रभाव भी सूर्य की किरणों से मिलकर प्रभावशाली होता है। अतः सूर्य की किरण और यज्ञ की ऊर्जा मिल मलार्क का शोधन कर आकाश में अधिकाधिक जल का भण्डारण करती है और समय आने पर परमात्मा के व्यवस्थानुसार मैदानी भाग में गर्म हो हवायें ऊपर उठ जाती हैं। उनकी पूर्ति के लिए समुद्री आर्द्र हवायें चलना आरम्भ करती हैं। वहीं जलीय उष्मा पाकर वृष्टि का रूप पकड़ती हैं। वेद में बारहो महीना यज्ञ का विधान है। वर्षा ऋतु में जब-जब वर्षा का व्यवधान हो या कमी हो या अभाव होने पर उस समय वृष्टि यंज्ञ के सामान द्वारा मानसून आकर्षण कर औषधि का प्रयोग वृष्टि के लिए अवश्य यज्ञ करना चाहिए। जिसमें वर्षा-का अभाव दूर हो साथ ही यदि अत्यधिक हो तब यज्ञ द्वारा रोकना नहीं चाहिए। क्योंकि जल अमृत है। दो माह की वृष्टि से खेती भी करते, वनस्पति वृक्ष भी उगाते तथा इसी जल से जमीन के अन्दर संग्रह भी होती है। जिससे आठ महीने तक पृथ्वी,

ताल, पोखरी, वांध के द्वारा निकाल हम फसल तथा जीवन निर्वाह करते हैं। अत्यधिक तथा हानिकारक होने पर जन जीवन संकट हो तब वृष्टि अवरोधक यज्ञ करके वादल को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। यह वहुत ही आसान पर मानसून को सक्रिय करना यह प्रकृति नियम पर निर्भर है। मानसून काल में अभाव के लिए अवश्य यज्ञका सहारा लेना चाहिए। इसके लिए आद्रा नक्षत्र तथा हस्त में विशेष वृष्टि यज्ञ का लाभ उठा सकते हैं। बाकि बारह महीने में भैषज्य यज्ञ अवश्य कराना चाहिए। वर्षा ऋतु में रोगों की सम्भावना मन्दाग्नि, नमी बढ़ जाने से अनेक प्रकार के कीट-पतंगे सर्प आदि पैदा होते हैं जो फसलों तथा स्वास्थ्य दोनो के लिए अहितकर होते हैं। उस समय उसकी परम आवश्यकता होती है। बाढ़ वाले क्षेत्र में पानी के दोष से भी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वहाँ पानी की शुद्धि तथा यज्ञ और दवाओं का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए। आप का प्रश्न हो सकता है कि जब दवा काफी है तो यज्ञ की क्या आवश्यकता है ? दवा रोग ठीक करेगी । पर यज्ञ पर्यावरण को सामान्य करने तथा रोगाणुओं को वातावरण में ही मारनें में उपयुक्त होगी। जिससे कितने पशु तथा गरीब बिना खर्च ही स्वास्थ्यता का लाभ पा सकते हैं। स्वास्थ्य तथा पर्यावरण सामान्य होने में ज्यादा परेशानी नहीं उठानी पड़ती। यज्ञ एक सार्वजनिक उपयोगी प्रक्रिया है।

जो देखने में छोटी तथा बहुत ही प्रभावी होती है। इसे दैनिक जीवन में अवश्य अपनाना चाहिए। इसी में पंच महायज्ञ जीवन की इति कर्तव्यता है।

※※※

अथर्ववेद का वर्षा सूक्त

ग्रीष्म में अधिकाधिक यज्ञ करने से वर्षा समय से तथा अच्छी होती है। इसके लिए उपरोक्त सामग्री तथा गोघृत का प्रबन्ध कर इन मन्त्रों द्वारा अधिक से अधिक आहुतियां प्रदान करें।

१- समुत्यन्तु प्रदिशो नमस्वतीः समप्राणी वातजूतानी यन्तु।
प्रहऋषभस्य नदतो नमस्वतो वाश्र आपः पृथ्वी तर्पयन्तु।।

अर्थ (नमस्वतीः प्रदिशः सं उत्पन्तु) बादल से युक्त दिशायें उमड़ जाये (वात जूतानि अभ्राणि संयन्तु) वायु से चलाये गये उदक से युक्त मेघ मिलकर आवे। (महाऋषभस्य नदतः) महाबलवान गर्जना करते हुए (नमः स्वतवाप्र आपः पृथ्वी तर्पयन्तु) बादलों की गति युक्त जल धारायें भूमि को तृप्त करें।

भावार्थ :- चारों दिशाओं में बादल आ जाये, वायु जोर से बहे उस वायु से मेघ आकाश में आ जाये और बड़ी गर्जना होके वृष्टि करें।

२- समीक्षयुन्तु तविषाः सुदान वो अवां रसा औषधिभिः सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा भय यन्तु भूमि पृथग जायन्ता मोषधयों विश्वरूप।।

अर्थ :- (तविषा सुदानंतः समीक्षयन्तु) बलवान जल का उत्तम दान करने वाले मेघ दिखाई देते। (अपा रसा औषधीभिसचन्ताम्) जलों के रस औषधियों से संयुक्त हो जावे। (वर्षस्य सर्गाः भूमि महयन्तु) वृष्टि की धारायें भूमि को समृद्ध करें। (विश्वरूपा औषधयः पृथक जायन्ताम्) विविध रूंप वाली औषधियां अनेक प्रकार से उत्पन्न होंवे।

भावार्थ :- मेघ से आने वाला जल वनस्पतियों को मिले और सब वनस्पतियां उत्तम परिपुष्ट हो जावें।

३- समीक्षयस्व गायतो नभास्ययां वेगास पृथगु द्विजनताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि पृथग्जायन्तां बोरूधो विश्वरूपा।।

अर्थ - (गायतो-नभासि समीक्षयस्य) गर्जने वाले मेघों से युक्त आकाश दिखाओ (अपां वेगालः पृथक उद्विजन्ताम) जलों के वेग विविध प्रकार से उमड़ आवे। (वर्षस्य सर्गा भूमिं महयन्तु) वृष्टि की धारायें भूमि को संमृद्ध करें। (विश्वरूपा वीरूध पृथक जायन्ताम्) विविध रूप वाली औषधियां अनेक प्रकार से उत्पन्न हों।

भावार्थ :- गर्जना करने वाले मेघों से जोर की वृष्टि हो जावे और उस वृष्टि से औषधियां उत्तम रस वाली होवें।

४ - गणास्त्वोय गायन्तु मरूताः पर्जन्यों घोषिणः पृथक।
सर्गावर्षस्य पृथिर्विः मनुः।।

अर्थ - हे पर्जन्य (घोषिणः मरूताः गणाः त्वा पृथक उपगायन्तु) गर्जना करने वाले वायुओं के गण तेरा पृथक गान करें। (वर्षतः वर्षस्य सर्गा पृथ्वी अनुवर्षन्तु) वर्षते हुए भी धारायें पृथ्वी पर अनुकूल वर्षें।

भावार्थ :- वायु जोर से मेघों को लावे और प्रचण्ड धाराओं से अच्छी वृष्टि हो जावे।

५ - उदीरयत मरूतः समुद्रलस्त्वेषों अर्को नम उत्पातयाथ।
महत्रऋषियस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथ्वी तर्पयन्तु।।

अर्थ - हे मरूतः वायुओं (अर्कत्वेष नमः) सूर्य की उष्णता से बादलों को (समुद्रत उत्पातयाथ) समुद्र से उपर ले जाओ (अद्य उदीरयत्) और उपर उड़ाओ (महात्रऋषयस्य नदतः नभस्वतः) बड़े बलवान और शब्द करने वाले बादल युक्त आकाश से (वाश्राः आपः पृथिवि तर्पयन्तु) वेगवान जल धारायें पृथ्वी को तृप्त करें।

भावार्थ :- सूर्य की उष्णता से समुद्र के पानी की भाप होकर वायु से उपर जावे वहाँ वह इकट्ठी होकर मेघ बने, वहाँ बिजली की गर्जना होकर पृथ्वी को तृप्त

करनें वाली वृष्टि होवें।

६- अभिक्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयता समऽिध।
त्याया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमारैषी कृशगुरेत्वस्तम।।

अर्थ – हे (पर्जन्य) मेघ तू (अभिक्रन्दं) गर्जना कर (स्तनय) विद्युत का कड़कना (उदधि अर्दय) समुद्र को हिला दे (पयसा भूमि समऽिध) जल से भूमि भिगो दे (त्यया सृष्टं बहुले वर्षएतु) तेरे द्वारा उत्पन्न हुई बड़ी वृष्टि हमारे पास आवे (कृरागु) भूमि का कृषक (आशारएषी) आश्रय की इच्छा करने वाला होकर (अस्त एतु) अपने घर को चला आवे।

भावार्थ :- मेघ गर्जना करे, बिजली कड़के, समुद्र उछल पड़े, भूमि पर ऐसी वृष्टि हो जावे कि किसान अपने घर जाकर आश्रय लेवें।

७- सं वोदवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरूद्भिद प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनुः।।

अर्थ – (सुधनवः उत अज गयः उत्साः) उत्तम जल देने वाले बड़े श्रोत (वंः सं अव्न्तु) तुम्हारी रक्षा करें। (मरूद्भिद प्रच्युता मेघाः) वायुओं द्वारा प्रेरित मेघ (पृथिवी अनुवर्षन्तु) पृथ्वी पर अनुकुलन वर्षा करें।

भावार्थ :- जल देने वाले मेघ सबकी रक्षा करें। उनसे भूमि पर उत्तम वृष्टि होवे।

८- आशामाशां विद्योततां वाता वान्तु दिशो दशः।
मरूद्भि प्रच्युताः मेघाः सयन्तु पृथिवी मनु।। ८ ।।

अर्थ – (आशामाशां विद्योततां) दिशा-दिशा में बिजलियां चमके (दिशो-दिशः वाताः वान्तुः) हर एक दिशा में वायु बहे। (मरूद्रीय प्रच्युताः मेघाः पृथिवी अनु सयन्तु) वायुओं द्वारा चलाये गये मेघ पृथ्वी की ओर अनुकूलता से आवे।

भावार्थ :- हर एक दिशा में बिजलियां चमके, वायु जोर से चले। उनसे चलाये गये मेघ खूब वृष्टि करें।

९ - आपो विद्युदभ्रं वर्ष सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरूद्भि प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवी मनु।। ९ ।।

अर्थ - (आप विद्युत अभ्रं वर्षम्) जल विद्युत मेघ वृष्टि (उत अजगरा सुदानवः उत्सा) और बड़े जल देने वाले श्रोत। (वः सं अवन्तु) तुम्हारी रक्षा करें (मरूद्भि प्रच्युता मेघाः पृथिवी अनु प्र अवन्ते) वायुओं द्वारा प्रेरित मेघ भूमि की रक्षा करें।

भावार्थ :- मेघ, विद्युत, वृष्टि, जल, जलस्थान ये सब मनुष्यों की रक्षा करें। वायु से चलाये मेघ पृथ्वी पर उत्तम वृष्टि करें।

१० - अपामग्नि स्तनुभिः संविदानो य औषधिनामधिया वभूव।
सनो वर्ष वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि।। १०।।

अर्थ - (अपां अग्नि) मेघ के जलों में रहने वाला विद्युत अग्नि (तनुभिः सं विदानः) सब शरीर के साथ एक रूप होता हुआ (य औषधिनां अधिया वभूव) जो औषधियों का पालक होता है (स जादवेदा) वह अग्नि (दिवः परिअमृतं वर्षम्) आकाश से अमृत रूपी वृष्टि जल जो (प्रजाभ्यंः प्राणम्) प्रजाओं के लिए प्राणरूप है (नः) हमारे लिए (वन्तुतां) देवें।

भावार्थ :- मेघों में विद्युत रूप अग्नि है। वही वृष्टि करता है। इसलिए वह औषधियों का अधिपति है। वह उपर से वृष्टि करें और हमें अमृत जल देवें। उससे प्रणियों को जीवन मिले और सबकी रक्षा हो।

११- प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाय ईश्यन्तु दर्धिमर्दयाति।
प्र प्यायतां वृष्णों अश्वस्य रेतो अर्वगातेने स्तन इनोनेहि।।११।।

अर्थ - (प्रजापतिः सलिलात समुद्रात आयः आईरयन) प्रजापति जयमभय समुद्र से जल को प्रेरित करता हुआ(उदधिं आर्दयाति) समुद्र को गति देता है। इससे (अवस्य वृष्णः रेतः प्रप्यायता) वेगवान वृष्टि करने वाले मेघ से जल बढ़े। वृष्टि(एतेन स्तनयिलुना अर्वाङः आ इहि) इस गर्जन करनें वाले के साथ यहाँ आवें।

भावार्थ :- यह प्रजापालक समुद्र के जल को प्रेरित करता है। जिससे मेघ होते हैं। उससे भूमि के ऊपर पर्याप्त जल प्रांप्त होवे, यह मेघ बिजली के साथ हमारी भूमि के पार आ जावे।

१२- आपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरूणाव।
नीचीरपः सृज वदन्तु पृश्निवाह्वो मण्डूका इरिणानु ।।१२।।

अर्थ - (अपः निषिञ्चन्न असुरः) जल की वृष्टि करने वाला भेट (नयिता)हमारा पालक है। हे (वरूण) श्रेष्ट उदक का धारण करने वाले मेघ (अपां गर्गरा श्वसन्तु) जलों के गड़गड़ करने वाले मेघ चले (अपः नीची अवसृज) जल को नीचे की तरफ प्रवाहित कर (पृश्निवाह्वः मण्डूका) विचित्र रंग युक्त वाहु वाले मेढक (हरिणा अनवदन्तु) भूमि पर आकर शब्द करें ।

भावार्थ :- मेघ की वृष्टि से पृथ्वी कर बड़े श्रोत बहे। जल में मेढक उत्तम शब्द करें।

१३ - सम्बतसरं शशयाना ब्राम्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्य जिन्वितां प्रमंण्डूका अवादिशु।।१३।।

अर्थ - (मण्डूकाः पर्जन्य जिन्वितां वाचः) मेढक परजन्य से प्रेरित वाणी को (अवादिशु) बोलते हैं। जैसा कि (सम्वत्सर शशयाना व्रत चरिणः ब्रह्मणा) साल भर एक स्थान में रहकर व्रत करने वाले ब्राह्मण बोलते हैं।

भावार्थ :- ब्रत करने वाले ब्राह्मणोंके समान ये मेढक मानो साल भर व्रत कर रहे थे । अब अपना व्रत समाप्त कर बाहर आये हैं और अपना प्रवचन कर रहें हैं।

१४ - उप प्रवद मण्डूकि वर्षयावद ता दुरि।
मध्ये हृदस्य प्लवस्व निगृह्य चंतुरः पदः।। १४ ।।

अर्थ - हे (मण्डूकि) मेढकी हे (दादुरि) छोटी मेढकी (उपप्रवद) बोल (वर्ष आवद) वर्षा को बुला और (हृदयमध्ये) तालाब के मध्य में (चतुरः पदः विगृह्य) चारो पैर लेकर (प्लवस्व) तैर।

भावार्थ :- मेढक मेघों को बुलावें और वे जल से तालाब भरने के बाद उसमें खूब तैरें।

१५ - खण्डरवा इ

अर्थ - (खण्डरवे) हे बिल में रहने वाली (तादुरी)हे छोटी मेढकी(वर्षमध्ये वनुर्ध्वं) वृष्टि के बीच में आनन्दित हो। हे (पितरः) पालको(मरूता मनः इच्छतः) वायुओं का माननीय ज्ञान चाहो।

भावार्थ :- वृष्टि ऐसी हो कि जिसमें मेढक आनन्दित हो जावें।

१६ - महान्तं कोशमुदचाभि सि सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्यतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधया भवन्तु।। १६ ।।

अर्थ - (महान्तं काशं उदच्च) बड़े जल के खजाने को अर्थात मेघ को प्रेरित और (अभिषिण्च) जल सिंचन कर (सविद्युतं भवतु) आकाश बिजलियों से युक्त हो (वातः वातु) वायु कहता रहे। (यज्ञतन्वतां) यज्ञ की करो (औषधयः) औषधियाँ (बहुधा विसृष्टा) बहुत प्रकार से उत्पन्न हुई(आनन्दिनी भवन्तु) आनन्द देने वाली होवें।

भावार्थ :- मेघ आ जाये खूब वृष्टि हो। बिजली कड़के वायु बहे औषधियाँ पुष्ट हो। खूब अन्न उत्पन्न हो और यज्ञ बढ़ते जायें। ऋग्वेद में ऋतुओं को जगाने वाला प्रश्नात्मक मन्त्र है।

उत्तर - सुषप्वासं त्रिभवस्य पृच्छतां गोहचक इदं नो
श्वानवस्तो वोधयित्यम प्रवित्सवत्सरः इदं मया
सम्वत्सरं शशयाना ब्रह्मणां व्रत चारिणः

ऋग्वेद।१। १६१। १३।

वाचं परजन्यः जिन्विताम् प्रमण्डूका अवादिषु
ब्रह्मणासो अतिरात्रे न सोमेसदो न पूर्ण गायितो वदन्त
सम्वतसरस्य तदः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणां वभूव

१७ - ओउम् शनो वातः पवता शन्न स्तपतु सूर्य।
शन्नः कनिक्रदूदेव .पर्जन्योऽभि वर्षतु।।
यजु० ३६।१०

अर्थ - इसमें ऋग्वेद के दो मन्त्र दिये गये हैं। इनसे ज्ञात होता है कि मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आदि प्रकृति नियम के बहुत ही पायवन्द होते हैं। प्रकृति के अनुकूल उनका जीवन देखा जाता है। और उन्हे प्रकृति का ज्ञान मनुष्य से अधिक है। इसी कारण वे बहुत कम बीमार पड़ते हैं। उनके लिए डाक्टर की कोई जरूरत नहीं, वे स्वयं डॉक्टर होते हैं उनका प्राकृतिक जीवन आरोग्यतापूर्ण है। रोग तो मनुष्य के उपयोग में आने के कारण उनमें जो अनियमितता वर्ती जाती है। इस कारण होते हैं। वर्षा की सूचना देने वाला मेढ़क है। इसी प्रकार शरद के सूचक को श्वान कहा गया है। इनको इन ऋतुओं के आगमन का ज्ञान हो जाता है। इनसे अपने संदिग्धविचार में दृणता ला सकते हैं। वर्षा सूक्त में वर्षा, अग्नि और वायु के योग से होती है। इसका ज्ञान मनुष्य से पहले उन जीव जन्तुओं को होता है। अगर मनुष्य संदिग्ध हो तो उसे इनके माध्यम से निर्णय कर ऋतु के अनुसार आहार-विहार कृषि यात्रा आदि कर्म करनें चाहिए। इन मन्त्रों में कहीं ऐसा नहीं है कि जिनके अपने या पाठ मात्र से वर्षा आदि हो। यह बहुत बड़ी भूल होगी । वर्षा के लिए विद्युत और वायु का योग निर्भर है। और यह उष्मा और वायु को यज्ञ की रूक्ष और सोम औषधि कर सकती है। जो इस काल से ही परमात्मा की व्यवस्थासे पैदा हुई है। इनकी प्रकृति ही प्रकृति को प्रभावित कर सकती है। यहीं इसका रहस्य है। इसी अनुसार यज्ञादिक कर्म कर वायु शुद्धि, जल शुद्धि आदि को प्रभावित कर लाभ उठाना चाहिए। मन्त्र एक प्रेरणा श्रोत काल परख का ज्ञान देती है।

यज्ञ विधि वही नित्यकर्म पद्धति जैसी ही रहेगी, वर्षा सूक्त के मन्त्रों का अधिकाधिक आहुति देनी चाहिए। मन्त्र के माने विचार है इस अर्थ में श्रद्धा उत्पन्न होगी। श्रद्धा सत्य से बनी है। वह भावानुसार अवश्य आकर्षण होता है क्योंकि सारा संसार ही गुरूत्वाकर्षण पर ही आधारित है। यथा-पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे, अगर ब्रह्माण्ड का आकर्षण सूर्य से होता है, तो पिण्ड का आकर्षण

मन से है। यहीं परमकार्य साधक है। यह तर्क मात्र है। वैज्ञानिक ठोस प्रमाण मन्त्र के साथ नहीं हो सकते। यह आध्यात्म से परे है। अतः इसका भौतिक पक्ष हो तो तार्किक है वह है सामग्री और घृत विशेष उपयोगी सिद्ध होता है।

※※※

३३- गायत्री मंत्र तथा प्रणव

१. ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्।

अर्थ - सच्चिदानन्द, सकल जगतुत्पादक, प्रकाशकों के प्रकाशक, परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ पाप नाशक तेज का हम ध्यान करते हैं। वह परमेश्वर हमारी बुद्धि को उत्तम गुण कर्म स्वभाओं में प्रेरित करें।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्।

तक नृचिद् गायत्री मंत्र है जो २३ अक्षरी है। इस गायत्री मंत्र को गुरू मंत्र का रूप देने के लिए ऋषियों ने इसके पूर्व भूर्भुवः स्वः तीन व्याहृतियों से जोड़, जो एकाक्षरी गायत्री "ओ३म्" (प्रणव) के लिए है। इसका कारण तीन वर्णों के उद्धार (ब्रास्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हेतु ज्ञानार्जन के लिए गुरूकुल शिक्षा हेतु ब्रस्मचर्याश्रम में दे उपनयन संस्कार के साथ गुरू अपने गर्भ में लें। २५ वर्ष तक वेद वेदांग पारंगत बना मानो दूसरा जन्म (द्विज) ज्ञानी पुत्र के रूप में देता है। इसके लिए यज्ञ संध्योपासन कर ब्रस्मचारी अपनी प्राणन क्रिया द्वारा शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति का विकास कर सुयोग्य नागरिक बनता है।

परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' ही बताया गया है। बाकी सब नाम गुणवाचक है। यही एकाक्षरी गायत्री ही वास्तव में गुरूमंत्र है।
योगदर्शन २६ में -

"स एष पूर्वेषामपि गुरूः कालेना नवच्छेदात्"

यो० द० १/२६

अर्थ- वह (ईश्वर) पूर्व गुरूओं (ऋषि महर्षियों) का भी गुरू है। काल के द्वारा नष्ट न होने से।

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्"

यो० द० २५

अर्थ- उस ईश्वर में इतना ज्ञान है कि उसके बराबर किसी में भी ज्ञान नहीं है। अधिक की तो बात ही क्या? अर्थात ईश्वर सर्वज्ञ है। जब की जीव अल्पज्ञ परिच्छिन्न सूक्ष्म एक देशी है। और प्रकृति अज्ञ (जड़) है।

अब प्रश्न है। "गुरू" किसे कहते हैं? सामान्य रूप से तो गु=अन्धकार, रू=प्रकाश में लाना। पर कैसे?

गुरू में एक आकर्षण होता है जिसे गुरूत्वाकर्षण कहते हैं। जिसके आधार पर सभी श्रद्धालु आकृष्ट होते हैं।

प्रमाण में :- प्रमाण में जैसे सृष्टि क्रम में सूर्य गुरू ग्रह है। उसमें चुम्बकीय शक्ति है। जिसके आधार पर सारे ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र और तारे टिके हुए हैं। पर यह गुरू भाग भी बिना गति के रूक नहीं सकता। अतः ऋषियों के अनुसार सूर्य भी अपनी परिधि में गति कर रहा है। साथ ही उसके ये सारे ग्रह उपग्रह गति दे रहे हैं। उसकी परिधि राशियाँ हैं वे १२ हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। इसी गति के आधार पर सूर्य की किरणें सीधी, तिरछी अनेक प्रकार से पड़ती हैं। जिससे ६ ऋतुएं और ३ मौसम बनते है। इसी को गुरूत्वाकर्षण कहते हैं। सृष्टि में जितने भी सूर्य या गुरू ग्रह है। उनके उतने ही मण्डल हैं। यह अनेकों की संख्या में हैं।

इसी प्रकार ओ३म् भी है। और इसी के आकर्षण पर सारा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है तथा गति पा रहा है। यह तीन अक्षर ('अ', 'उ' 'म्') से बना हुआ है। इसी धुरी 'अ' से सतोगुण परमात्मा, 'उ' से रजोगुण जीवात्मा 'म' से तमोगुण प्रकृति। इन्ही धुरियों पर परमात्मा की सृष्टि क्रियाशील है। इसकी परिधि ६ रूप में है।

'अ'-से विराट, अग्नि, विश्वादि।

'उ'-से हिरण्यगर्भ, वायु, तेजस।

'म'-से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ।

यही परिधि है जिसमें परमेश्वर की सत्, रज, तम् द्वारा सारी सृष्टि गति करते हुए अपने अस्तित्व पर कायम है। अव एक-एक की व्याख्या करके देखें, यह परिधि है क्या?

(१) प्रथम-'अ'-सतगुणी परमात्मा का द्योतक है, जैसे 'अ' ६३ वर्णों में समाहित है। बिना अ के किसी का अस्तित्व नहीं उसी प्रकार परमात्मा सबमें समाहित है।

प्रमाण-

मन्त्र-

"त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरूषः पादोऽस्येहा भवत्पुनः।
ततो विष्वङ व्यक्रमात्सासनानशने अभिं।।"

यजु० ३१-४

यह मन्त्र पुरूष सूक्त का है। यह परमेश्वर कार्य जगत से पृथक तीन अंश से प्रकाशित हुआ और एक अंश से अपने सामर्थ्य से सब जगत को बार-बार उत्पन्न तथा प्रलय करता है। तथा इस चराचर जगत में व्याप्त होकर स्थित भी रहता है।

इस प्रकार परमात्मा जड़ और चेतन सभी जगत (गतिशील) वस्तुओं को बनाकर सृष्टि और प्रलय भी करता है।

अब इस सृष्टि पर विचार करो।

'अ' से पहला विराट शब्द आता है-विराट के माने असीम जिसका कोई नाप, तौल, पैमाना न हो। इसका नियम यह है जो चीज जितनी ही सूक्ष्म होगी वह उतनी ही प्रभावी तथा विस्तृत होगी और वह स्थूल को भेद सकती है पर स्थूल सूक्ष्म में प्रवेश नहीं कर सकता है। जैसे पृथ्वी सबसे स्थूल है, जल उससे सूक्ष्म है। अतः जल का विस्तार पृथ्वी का तीन गुना तथा जल पृथ्वी में प्रविष्ट भी है। अग्नि-सौर मण्डल में विद्युत, जातवेदा, अग्नि के रूप में तीनों लोकों में विस्तृत है। जल का अनेक गुना है। साथ ही गरम करने पर जल में प्रवेश भी

कर जाती है, परन्तु जल इसमें प्रविष्ट नहीं है। इसी प्रकार वायु और आकाश भी सूक्ष्माति सूक्ष्म है। पदार्थों से सूक्ष्म आत्मा है। वह सभी पदार्थ में प्रविष्ट हो सकती है।

उपनिषदकार के अनुसार कोई पदार्थ उसके अवरोधक नहीं हो सकते हैं। अब सबसे सूक्ष्म और अज परमात्मा है, जो सभी आत्माओं और पदार्थों में प्रविष्ट हो सकता है। लेकिन पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव उसमें नहीं प्रविष्ट हो सकते। वह अणु-अणु में व्याप्त है। पर अणु स्थूल तथा संयोजक होने के कारण उसमें नहीं प्रविष्ट हो सकते हैं और न उसे दूषित कर सकते हैं। यही कारण है कि ईश्वर मल-मूत्र तथा गन्दी से गन्दी वस्तुओं में प्रविष्ट है। पर इसके गुण-दोष उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकते। अतः परमात्मा अविकारी है। दोष-गुण, स्थूल तथा संयोगज में ही और वाह्य है। सूक्ष्म में किसी प्रकार प्रविष्ट नहीं हो सकते। इस सूक्ष्मता के कारण परमात्मा निर्विकार है।

प्रमाण :-

"सूर्यो यथासर्वलोकस्य चर्क्षनलिप्येत चाक्षु वैवीह्य दोषै।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा नेलिप्यते लोक दुःखेन वाह्यः।।"

क० ११/५

अर्थ :- जिस प्रकार समस्त संसार का चक्षु सूर्य है। पर चक्षु में दोष आने से सूर्य में कोई दोष नहीं आता। उसी प्रकार परमात्मा समस्त संसार में व्यापक होते हुए भी सांसारिक दोषों में लिप्त नहीं होता। संसार में जितने दोष हैं स्थूल में हैं। स्थूल सूक्ष्म से बाहर रहता है। भीतर नहीं जा सकता। निःसन्देह परमात्मा सर्वव्यापक होने से मलिन से मलिन पदार्थों में विद्यमान है। पर स्थूल के गुण दोष उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकते। इसी रहस्य को अन्य धर्मावलम्बियों ने नहीं समझ पाया।

विराट :- उस व्यापक परमात्मा को चौथे आसमान, सातवें आसमान, बैकुण्ठ, गोलोक, कैलाश में ले जाकर बैठाया।

परमात्मा इतना विराट है कि आकाश भी उसमें समाहित है। और सारी

सृष्टि इस आकाश में ही बसी हुई है।

२. अग्नि : शब्द आता है। अग्नि परमात्मा का लिंग है। परमात्मा आत्म तत्व हैं। परन्तु अग्नि शक्ति का ही स्वरूप है। प्रलय काल में घोर अंधकार था, सृष्टि के प्रारम्भ काल में, एक धमाका हुआ, इसे वैज्ञानिक भी मानते हैं। वेद में भी एक मंत्र ऋग्वेद प्रथम मण्डल का १६३ है-

"यदक्रन्दः प्रथमं जायमाना उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषाद्।
श्वेनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्य महि जातते अर्वन।।"

ऋ० १/१६३

इस प्रकार ईश्वरीय अग्नि प्रकट होकर सभी परमाणु पर छाकर गुणों में गतिशीलता हुई। यहीं से सृष्टि प्रारम्भ हुई।

परमाणु अणु में और अणु द्विषरेणु त्रिषरेणु आदि में परिणित हो, वस्तुओं की रचना हुई। वह अग्नि वेदों में कई नाम से है।

तेज, अश्वाग्नि, अर्व, प्राण आदि। जगत के जागृत कारण में इसी को बैश्वानर-अग्नि के नाम से कहा गया है। यह ईश्वरीय विज्ञान है। मनुष्य के ज्ञान से परे है। जिससे सूर्यादि बने। इन्द्राग्नि जो भी हो इससे कुछ भिन्न प्रतीत होती है। जो सूर्य तथा ईश्वरीय अग्नि से निर्मित है। जिसे विद्युत भी कहते हैं। जिसे वैज्ञानिकों ने पता लगाकर औद्योगिकरण में योगदान किया है। तीसरी जातवेदा अग्नि मौलिक है। इस प्रकार ईश्वरीय अग्नि ही परमाणु को क्रियाशीलता दे वायु की उत्पत्ति कर जिसे मातरिश्वा कहते हैं। उसी से सूर्यादि की रचना हुई। अतः इस शक्ति के रूप में ईश्वरीय शक्ति ही है। जो परमाणुओं के माध्यम से प्रकाशित हो सृष्टि का कारण बनी। इसी से परमात्मा अग्रणी अग्नि स्वरूप कहलाता है। जो तीन रूपों में सर्वत्र व्यापक है।

३. विश्वादिः- अग्नि और वायु के संयोग से द्विषरेणु, त्रिषरेणु आदि द्वारा ईश्वरीय विज्ञान से वस्तुओं की संरचना हुई। फिर उनपर वृष्टि, पुनः वनस्पति, औषधि, तत्पश्चात जीव-जन्तु, अन्त में मनुष्य की उत्पत्ति हुई। यह ईश्वरीय

व्यवस्था से सम्भव हुआ।

ओ३म् का दूसरा अक्षर 'उ' इससे-

हिरण्यगर्भ : इससे जीव की व्यवस्था है। उसी सृष्टि में ओज के परमाणु भी निहित थे। जिनमें प्रथम अयोनिज सृष्टि की उत्पत्ति हुई। ओज ही तेज है, इसी क्रम में आज भी सृष्टि चल रही है।

२. वायु :- परमाणुओं की क्रियाशीलता आकर्षण-विकर्षण से हुई। और उस गति से वायु की उत्पत्ति हुई। जिसे मातरिस्वा कहते हैं। यह वायु ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों में गतिशीलता दे रही है। बिना इसके (वायु के) पलक भी नहीं झपक सकती। यही वायु प्राण रूप से 'भूः' जो परमात्मा का नाम है। उसी का विज्ञान है।

३. तेजस :- सभी वनस्पति औषधी का जो अति सुक्ष्म सार तत्व है। जिससे बीज तथा वीर्य क्रम है। वही तेज है। जो सारे शरीर का सार भाग संक्रमित हो जिसे वीर्य या ओज कहते हैं। वही तेज स्वरूप है जो सब प्रकार के प्राणियों में निहित है। यह व्यवस्था परमात्मा की है। यही तेजस है।

३. 'म' प्रकृति से-

१. ईश्वर :- इस सृष्टि के जितने खनिज धातुएं, अन्न, फल, वनस्पति, औषधी, जिन्हे धन-धान्य समझते हैं, यह ईश्वर के ऋत ज्ञान से बनाई गयी हैं। इसका उपयोग, पहचान, इससे उपकार लेना। यह सत्य ज्ञान द्वारा मनुष्य कर सकता है। अतः इस ऐश्वर्य का कारण रूप, परमात्मा तथा कार्य और उपयोग सामान्य जीवात्मा का है।

२. आदित्य :- परमात्मा के इस क्रम का आदि अन्त नहीं है। साथ ही आदित्य के माध्यम से काल गणना प्रकाश तथा जीवनी शक्ति परमात्मा की व्यवस्था है।

३. प्राज्ञ :- सृष्टि में तृण से पर्वत, चींटी से हाथी, मनुष्यादि, जड़-चेतन जो कुछ बनाया है। सब का प्रयोजन है। एक भी पदार्थ निरर्थक नहीं। कर्त्ता (भोग्ता) के अनुसार भोग्य पदार्थ बनाया है। जिसका कारण दर्शन बताता है।

"प्रकाश क्रिया स्थितिशील पंचभूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थं दृशम्"

सृष्टि की सारी व्यवस्था जीव के कर्मानुसार भोग भोगते अपवर्ग की प्राप्ति हेतु बनाया। वह कौन है? वही ओ३म् है।

प्रणव (ओ३म्) जो परमात्मा का मुख्य नाम है, एकाक्षरी गायत्री मन्त्र है। वह आरक्षणे धातु से बना है। इसके विस्तार को 'पातंजलि' ऋषि द्वारा दी गयी व्याख्या के बाद चराचर जगत में कुछ भी ओ३म् से परे नहीं दिखता। न रह जाता है।

अब नृ चिद् गायंत्री तथा व्याहृतियों पर विचार करें-

गायत्री मन्त्र में प्रश्न तत् किसके लिये आया है? तो ज्ञात हुआ कि सवितुर के लिए। फिर प्रश्न है कि सवितुर किसका गुण वाचक है? तो ज्ञात होता है कि 'ओ३म्' का ही हो सकता है। क्योकि उसी के विस्तार के अन्दर यह भी आता है। तो अब एक विचार आता है कि तब क्यों न यह तत् ओ३म् के साथ जोड़कर अर्थ करें। जब ओ३म् से जोड़ते हैं, तब यह 'ओ३म्' गुरू स्थान में आ जाता है और इसी से सभी व्याहृतियां और गायत्री मन्त्र के चरण जुट कर इस गुरू मन्त्र की सार्थकता का गान करते हैं। अतः इसका रूप अब इस प्रकार हो जाता है।

अतः वह जो परमेश्वर सृस्टि का नियंत्ता और पालनकर्त्ता है वह 'प्रणव' ही है। अतः वह तत् सबके साथ लगकर यह अर्थ प्रकट करता है।

तत् 'ओ३म्' वह ओ३म् ही भूः है तत् भूः- सभी प्राणियों का प्राण प्रदाता, भू गुण वाचक, ओ३म् का ही १० वायु हैं।

ततः भुवः वही सर्व दुखों का नाशक है। तत् वह स्वः ही सुख स्वरूप ओ३म् है।

तत् सवितुःवरेण्यं उसी जगदउत्पादक परमात्मा का वरण करने योग्य है तत् भर्गोदेवस्य धीमहि उसी परमात्मा के विशुद्ध तेज को धारण करें। तत् धियो

योनः प्रचोदयात्। वही हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभाव में प्रेरित करें।

इस प्रकार तत् भूः तत् भुवः तत् स्वः तत् सवितुर्वरेण्यम् तत् भर्गो देवस्य धीमहि, तत् धियो योनः प्रचोदयात्। तत् सवितुः के लिए है, और सवितुः ओ३म् का ही गुणवाचक है। सभी उस ओ३म् के विशेषण तथा गुण वाचक हो गये। अतः पूरे गायत्री मन्त्र में ओ३म् के अलावा रह ही क्या गया? इससे सिद्ध होता है कि सारे सृष्टि प्रपंच के पीछे परमात्मा का ओ३म् नाम ही मुख्य है। और सब उसी के गुण वाचक या विशेषण हैं। और ओ३म् का आज तक कोई आकार या प्रतिमा नहीं है। फिर यह गायत्री मूर्ति किस आधार पर बन गयी?

साथ ही अनेक देवी देवता की उपासना और भगवान कहाँ से आये? जबकि सारा ब्रह्माण्ड ही उस ओ३म् में समाहित है। सारी सार्थकता इसी के साथ सम्भव है। अन्य सब निरर्थक, अन्धी श्रद्धा भक्ति और अन्ध विश्वास पर टिके हैं। जो कभी भी कल्याणकारी या कल्याण पक्ष के पथिक नहीं बन सकते। ओ३म् के जपने स्मरण करने ऐसा चिन्तन करने से, परमात्मा की यथार्थ भक्ति, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जपादि होता है। अन्यथा नहीं।

ओ३म् को 'प्रणव' क्यो कहा गया? प्रकृति में भूः का अर्थ करते हुए महर्षि ने प्राणियों में जो प्राणन क्रिया है, दश वायुओं के रूप में वह परमात्मा की ही क्रिया है। इसी से प्राणी कोइ भी कार्य कर सकता है। प्राण ही बल है। इसी को वश में कर सीने पर हाथी चढ़ाना, सरिया मोड़ना, ट्रक तथा गाड़ी रोकना कार्य होता है। यही नाड़ी संस्थान में रक्त शोधक तथा स्वास्थ्य रक्षक है। इसी का संचार रूकने से ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोग भी होते हैं। वायु का जीवन में बहुत महत्वपूर्ण उपयोग है। यह सब परमात्मा का विज्ञान है। अगर ध्यान में हम अपने को सभी विषयों से निर्विषय कर दें, तो २४ घण्टे में हमारी श्वास २१५०० बार चलती है। वह 'ओ३म्' का ही जाप करती है। प्राणों से सम्बन्ध के कारण इसे 'प्रणव' कहा गया है। इसी को "ध्यानं निर्बिषयं मनः" होकर जब गौर करते हैं तो केवल 'ओ३म्' का ही जाप होता है। इसी से इसे प्रणव कहते हैं।

गय माने भी प्राण ही होते हैं। जिस परमेश्वर से इन प्राणों की रक्षा होती

है। इसी को सावित्री मन्त्र या गायत्रीं मन्त्र भी कहते हैं। गायत्र त्रायते गायत्रीं। जो गानें वाले को तार दे।

इसके अतिरिक्त 'ओ३म्' तीन अक्षर 'अ', 'उ', 'म' से बना है। 'अ' से परमात्मा, 'उ' से जीवात्मा, 'म' से प्रकृति की मान्यता है। जीवात्मा को सुख चाहिए। अतः वह प्रकृति में उसे लगाता है। पर वहीं सुख के साथ-साथ दुःख भी है। चिर सुख उसे नहीं प्राप्त होता, 'उ' जब 'म' प्रकृति से जीव मिलता है तो मू बन जाता है। वह वास्य सुखों हो प्रकृति सुख, इन्द्रियों के सुख, भोग में लिप्त होता है। जिससे उसका पतन होता है। और वह रोग ग्रस्त हो, सिर धुन कर पछताता है। इसी को भर्तृहरी ने कहा है कि-

भोगां न भुक्ता वय मेव भुक्ता। तपं न तप्ता वय मेव तप्ता।।
कालो न जाता वय मेव जाता। तृष्णा न जीर्णा वय मेव जीर्णा।।

सारे भोग विष तुल्य हैं। और इन्द्रियाँ ही भोगने के कारण (साधन) हैं। पर विषय का सेवन कर कौन स्वस्थ्य रहा है? अतः भोग ही रोग बन जाता है। भोग हम नहीं भोगते बल्कि भोगे जाते हैं। इन्द्रिय दुख ताप-दुख है। यह भोग युक्त परिश्रम (तप) स्वयं तो दुखी नहीं होता, पर मेरे दुख का कारण बनता है। यह समय नहीं बीत रहा है। बल्कि हमारी उम्र ही समाप्त हो जाती है। फिर भी यह भोग की तृष्णा बूढ़ी (समाप्त) नहीं होती। हम ही वृद्ध हो जाते हैं।

अतः ऋषियों ने विचार कर कहा है कि प्रकृति में सुख तो है ही नहीं, जो है वह भी दुखकारक ही है। योग दर्शन-

'परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति
विरोधाच्च दुःखमेव सर्व विवेकिनः'

२/१५

अर्थ- परिणाम दुख, ताप दुख और संस्कार दुखों तथा सत्व, रज एवं तम वृत्तियों के परस्पर विरोध से विवेकी पुरूष के लिए सब दुःख ही दुःख है।

इसलिए जीवात्मा (म) प्रकृति को छोड़ जब परवैराग्य से गुणातीत हो,

परमात्मा (अ) से मिलती है, तो उस का उत्कर्ष (उत्थान) होता है और ऊपर उठ कर विदेह या प्रकृति लय मुक्ति का दरवाजा खुलता हैं।

सारांश यह है कि ओ३म् की स्तुति उसके गुणों का नव रूप में वर्णन ही स्तुति (गुणगान) है। गुण किसी का जान लेने के बाद ही उसमें श्रद्धा तथा प्रेम होता है। जब प्रेम होता है तब उसके पास जाता है। इसे उपासना कहते हैं। जब उसके पास जाता है तब अपनी प्रार्थना निवेदित करता है। महर्षि कहते हैं कि परमात्मा अवश्य सुनता है। पर शुभ कर्मों के लिए, अशुभ नहीं। इस प्रकार उपासना करने से ऋषि कहते हैं कि- जैसे अग्नि के पास जाने से शीत की निवृत्ति हो जाती है, वैसे ही परमात्मा के पास जाने से सारे दुरितानि, पाप, ताप नष्ट हो जाते हैं और इतना आत्म बल मिलता है कि पहाड़ से बड़ा दुख भी आसानी से पार कर जाता है। घबड़ाता नहीं, यह क्या कम है।

अतः गायत्री मन्त्र पर पूर्ण विचार करने से वह एकाक्षर गायत्री प्रणव् का ही स्वरूप तथा मोक्षदाता ओ३म् की ही व्याख्या है। इससे ज्ञात हुआ कि आज तक ओ३म् की कोई मूर्ति नहीं बनी फिर गायत्री मूर्ति कैसे बनी जो किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। गायत्री छन्द है छन्द ही रहेगा जिससे बने अनेक मन्त्र (विचार) मानव कल्याण के वेद मन्त्र हैं।

***

३४- व्यवहारिक त्रैत

'त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारिकमिव वन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।'
ऋग्वेद ७/५६/१२

अम्बक कहते हैं पिता को,. जो पालनकर्ता है। लेकिन तीन पिता यह एक समस्या भारतीय संस्कृति के लिए है। फिर भी व्यवहार जगत बिना तीन के चलता नहीं। अतः अर्थ व्यवहार जगत से है। अगर पाठशाला है, मास्टर भी है पर विद्यार्थी नहीं तो पाठशाला नही चलेगी। दुकान और सेठ हैं पर खरीददार नही हो क्या होगा? माता पिता हैं पर सन्तान नही तब भी ठीक नहीं। संसार का व्यवहार रूपी यजन जो कल्याणकारी या सुगन्धित और पुष्टिकारक है। वह यज्ञ ही हो सकता है। लेकिन यज्ञ के तीन अर्थ हैं- दान, देव पूजन और संगति करण। यह रूप संगति करण का है। और गुण कर्म स्वभाव से तात्पर्य है। संसार का पिता परमेश्वर तीन व्यवहार-'उत्पत्ति, पालन और न्याय से संसार का पालन करता है। व्यवस्था की दृष्टि से भी सत्, रज, तम, आत्मा परमात्मा, प्रकृति, ज्ञान, कर्म एवं उपासना, तीन प्रकार से ही व्यवस्था सुगमता से शान्ति पूर्वक चल सकती है। एक के अभाव में दो में द्वन्द हो जाता है। पूरे संसार में द्वन्द ही तो चल रहा है। धर्म है तो अधर्म भी है। पुण्य है तो पाप भी है। सत्य है तो झूठ भी पास ही है। न्याय है तो अन्याय भी है। स्वर्ग है तो नरक भी है। दिन है तो रात भी है। आर्य हैं तो अनार्य भी हैं। ज्ञानी हैं तो मुर्ख भी हैं। देव हैं तो दानव भी हैं। इस प्रकार यह द्वन्द (झगड़ा) सृष्टि के आदि से अन्त तक रहेगा। अतः यही उलझन राग-द्वेष का कारण बनी हुई है। इस उलझन को कैसे मिटायें, इसके रहते सत्य और न्याय का दर्शन नहीं हो सकता।
सांख्य दर्शन भी कहता है-

'काम्ये अकाम्ये साधयत्वं विशेषात्'

चाहे कर्म सकाम हो या निष्काम, दुख की निवृत्ति विना ज्ञान के नहीं हो सकती। दुख का कारण क्या है? कर्म कहां से आया? उ०-वृक्ति से। वृत्ति का कारण राग-द्वेष और राग-द्वेष का कारण अविद्या। अविद्या ईश्वरी ज्ञान वेद से हीं जायेगी। इसके रहते न्याय और सत्य का पालन कठिन हैं और इसके बिना धर्म नहीं चल सकता है।

तीन के योग से सारा व्यवहार जगत सुगम हो जाता है। अतः तीन का यजन (संगति करण करना चाहिए) कर्म और उपासना की सिद्धि ज्ञान से ही हो सकती है।

"दो द्वन्द हैं और तीन व्यवहार हैं"। दो के योग से तीसरे की उत्पत्ति भी होती है। जब मनुष्य अज्ञान वश तीसरे को छोड़ देता है तो क्लेशों में फंस जाता है।

जैसे- परमात्मा को छोड़, आत्मा प्रकृति के बन्धनों में पड़ जाता है। असन्तोष, राग, द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, क्रोध एवं लोभ आदि भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। पर जब परमात्मा को याद करता है तो स्व कर्मो के अनुसार सुख दुख, सफलता असफलता, ईश्वरीय व्यवस्था होती है। अतः यह परमात्मा का कर्म-फल अटल नियम है आदेश नहीं। आदेश टाला जा सकता है पर नियम नहीं, और वहीं शान्ति की राह मिल जाती है।

इसी प्रकार सत, रज एवं तम तीनों बराबर हर व्यक्ति में रहते हैं। यह परमात्मा की व्यवस्था है। पर मनुष्य ज्यों ही सत को निकाला कि द्वन्द में पड़ गया और जीव बन्ध का कारण बन जाता है।

अवस्था भी तीन है। बाल, युवा एवं वृद्ध। बालपन का ज्ञान, युवा का संग्रह और वृद्ध का अनुभव ही समाधान देते हैं। वृद्ध का अपमान दुख का कारण बन जाता है।

इस प्रकार तीन पिता (पोषक) हीं व्यवहार जगत को संगति करण दे, यज्ञमय जीवन बना, (सुगन्धि और पुष्टि) यश और स्वास्थ्य समाज को दे सकते

हैं। अतः मृत्यु (क्लेश) से बचने तथा अमृत पद प्राप्ति के लिए तीन का सामंजस्य बेल, नाल और फल के मेल से स्वाद मिल सकता है। इसी प्रकार ज्ञान और कर्म का समन्वय ही उपासना का कारण बन सकता है तथा कल्याणकर हो सकता है।

परमात्मा इस प्रकार ज्ञान प्रदान कर मृत्यु (बन्धन) से छुड़ा अमृत पद प्रदान करने की कृपा करें।

※※※

३५- पुरूष एवं पुरूषार्थी

'वेदाहमेतम् पुरूषं महान्तमू आदित्य वर्ण तमसः परस्तात्।
त्वमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।'

श्रद्धानन्द जी से एक आधुनिक वेदान्ती ने प्रश्न पूछा 'क्या परमात्मा का नाम पुरूष भी है?

हां! और उपरोक्त मन्त्र का उदाहरण दिया। उसका (आधुनिक वेदान्ती) तात्पर्य था कि यदि दोनों पुरूष है तो फिर 'एकोहं द्वितीयो नास्ति' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्वं मसि' आधुनिक वेदान्ती के अर्थ के अनुसार उनके अर्थ पर आर्य समाज को आपत्ति क्यों? यद्यपि महर्षि ने इन सूक्तियों के संही अर्थ सत्यार्थ प्रकाश में कर दिया है। फिर भी उनकी मान्यतायें वही (अपनी) हैं।

अर्थ- मैं उस परमात्मा (पुरूष) को जानता हूं जो सूर्यवत प्रकाश तथा ज्ञान वाला है, उस महान पुरूष (परमात्मा) को जानकर ही जन्म मरण के बन्धन से छूटा जा सकता है। अन्य कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

१. अगर दोनों पुरूषार्थी हैं तो इनमें भेद क्या है? भेद यही है कि परमात्मा अपने पौरूष से बिना किसी की सहायता के सृष्टि रचना, पालन करना तथा न्यायपूर्वक व्यवस्था में रखता है। इसी से वह सर्वशक्तिमान भी है और मनुष्य अपने पुरूषार्थ से भोगापवर्गार्थ उपयोग करता तथा सुखी दुखी होता है।

२. योगदर्शन कहता है-

क्लेशकर्मविपाकाशयैरंपरामृष्टः पुरूष विशेष ईश्वर।।२४।।

अर्थ- ईश्वर पंच क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश) शुभ अशुभ और मिश्रित कर्म और इन कर्मो के सुख दुख रूपी फल तथा वासनाओं

से विल्कुल अलग विशेष पुरूष है और मनुष्य इसमें लिप्त सामान्य पुरूष है।

३. मनुष्य अपने ही अज्ञान पूर्ण कर्म में वंधता है और अपने प्रयत्न से ही ज्ञानपूर्ण कर्म करके छूट जाता है। परमात्मा न इसे बांधता है न छुड़ाता है।

४. कर्म अपनी सामर्थ्यानुसार करने में जीव स्वतंत्र है पर फल के लिए परमात्मा की व्यवस्था और न्याय के अन्दर है।

५. जीवात्मा शुभ कर्म करने में स्वतंत्र तथा फल स्वयं प्राप्त करता है। पर दुष्टकर्म का दण्ड परमात्मा अवश्य देता है।

आर्योद्धेश्य रत्नमाला में स्वामी जी पुरूषार्थ का अर्थ करते हैं। पुरूषार्थ- अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिए मन, शरीर, वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करता है उसको पुरूषार्थ कहते हैं।

अध्यात्म के दृष्टि से चार पुरूषार्थ मनुष्य के बताये गये हैं, १. धर्म, २. अर्थ, ३. काम पुरूषार्थ ४. मोक्ष को परम पुरूषार्थ कहा गया है। इसमें तीन नैमित्तिक हैं। धर्म, अर्थ, और मोक्ष नैमित्तिक हैं पर काम स्वाभाविक है। महर्षि कहते हैं 'स्वभाव ही धर्म है जिसके रहने से उस वस्तु का अस्तित्व रहे, न रहने से न रहे उसे स्वाभाविक कहते हैं। इसका अर्थ हुआ कि काम वास्तव में धर्म है। इसके बिना सृष्टि का अस्तित्व ही मिट सकता है। अतः यह धर्म हुआ। इसका क्या रूप है? पुरूष में यह रति के रूप में है, रति श्रृंगार रस का स्थायी भाव है। अर्थात् जहां पुरूष रहेगा वहां श्रृंगारिकता अवश्य रहेगी, इसी कारण इस संसार की सजावट, शरीर की सजावट, फैशन, टी.वी., सिनेमा, गाड़ी-घोड़ा, महल-झोपड़ी, फूल-गुलदस्ते और बाग-बगीचे सभी सजावट, उद्दीपक भाव से वर्तमान है। स्त्री में यह धर्म पुत्रेच्छा के रूप में स्थित होती है। मनुष्य के सिवाय पशु पक्षी, कीट, पतंग में भी यह बच्चे के प्रति निःस्वार्थ स्नेह देखा गया है, कोई जीव इससे वंचित नहीं हैं। अतः यह भी पुरूषार्थ के अंदर ही आता है पर आधुनिक युग में इसका गलत प्रचार हो रहा है, जो कि नग्न प्रदर्शन का रूप धारण कर लिया है। हर दीवाल पर तथा जगह-जगह पोस्टर लगा है नामर्द की दवा डाक्टर जावेद से मिलो। क्या पुरूषार्थ अगर यही है तो लादेन अपने पिता

की ४८ वीं संतान है और उसी क्रम में एक चाइनी मुसलमान अखवार में निकला, ७५ वर्ष की आयु में चार बीबी और दो रखैल से पच्चासी बच्चे पैदा किया। इस आधार पर तो वह सबसे बड़ा पुरूषार्थ का विश्व रिकार्ड तैयार किया पर यह वासना का नग्न रूप तथा जंगलीपन है। आध्यात्म में इन्द्रिय संयम ही तप है। पुरूषार्थ भी है। पांच इन्द्रियाँ इसके पांच विषय हैं अगर किसी में भटकाव हुआ तो उसका प्रभाव सब पर होगा। ये पांच इन्द्रियों का विषय ही उनकी कामनायें हैं। पृथ्वी तत्व का स्थान मूलाधार चक्र है इसका विषय गंध है और ज्ञानेन्द्रिय नाशिका है। जल तत्व का मूल उपस्थान चक्र है पर ज्ञानेन्द्रिय रसना है। वायु तत्व का स्थान हृदय चक्र है। पर ज्ञानेद्रिय, स्पर्शेन्द्रिय त्वचा है। आकाश तत्व का स्थान कण्ठ चक्र है। पर ज्ञानेद्रिय वाणी है। इस प्रकार कर्मेन्द्रिय गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर, मुख तथा ज्ञानेन्द्रिय आंख, कान, नाक, मुख और त्वचा है। तथा तत्वों के चक्र भी उपरोक्त हैं। आंख देखती है, सुन्दर आकर्षक रूप को, नाक सुगंध, दुर्गन्ध की वाणी बात करती है, कान प्रतिउत्तर सुनता है रसना स्वाद लेती है। स्पर्शन्द्रिय कोमल तथा कठोर का आभाष करती है तब सबके सहयोग से कार्य सम्पन्न होता है। यही भले बुरे कर्म के कारण हैं। अतः इनका तप तीन रूपों में है।

१. इन्द्रिय संयम, जो ब्रह्मचर्याश्रम का जीवन है। अगर इन्द्रियां संयमित नही हैं, तो वह मेधावी छात्र नहीं हो सकता है। गृहस्थाश्रम भोगाश्रम है, पर समाज व्यवस्था, सदाचार, नैतिकता, चरित्र तथा मर्यादित व्यवस्था, सुख शान्ति और स्वास्थ्य के लिए इनका दमन भी करना आवश्यक है। वानप्रस्थाश्रम विरक्ताश्रम है। इसके लिए इन्द्रिय-निग्रह परम आवश्यक है। व्यवस्थानुसार तीनों आश्रम संयम, दमन और निग्रह से लाभ उठा सकते हैं। इसके बाद ही प्रत्याहार संभव है। जिसे प्राप्त कर ही सन्यासी निरापद धर्म प्रचार का अधिकारी है। सन्यासी के तीन कर्म हैं। पुत्रेषणा, प्रत्याहार से होती है। वित्तेषणा मन से होती है तथा लोकेषणा का विवेक से निराकरण कर, लोक कल्याणार्थ धर्म प्रचार परम कर्तव्य है। मुक्ति ग्रन्थों का अध्ययन शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रद्धा और असम्प्रज्ञात समाधि का यथा विधि सेवन कर, परम पुरूषार्थ सिद्ध कर, जन्म मरण के दुख से छुड़ा सकता है। दूसरा रास्ता नहीं है। अतः यह आत्मा अल्पज्ञ परिच्छिन्न

एकदेशी होने पर भी परम पुरूषार्थी तथा शक्तिशाली है। यह सृष्टि बना नहीं सकती. यह परमात्मा का काम है। पर मुक्तावस्था में जड़, मन और शरीर से सम्बन्ध छूट जाने पर इसकी अव्याहत गति (तीव्र गति) से परमात्मा के लोकलोकान्तर अर्थात् सृष्टि को पूर्ण देखने और जानने में सक्षम होती है। अगर अधूरा रहा तो मोक्ष का आनन्द ही क्या? यह परम पुरूषार्थी होने पर भी अल्पज्ञ होने के कारण ही ईश्वर का सहारा लेना पड़ता है। यही ईश्वर भक्ति और उपासना का रहस्य है।

वरना यह अपने कर्म से बंधता और अपने ही ज्ञान से छूटता है। अगर न चाहे न प्रयत्न करें तो इसे कोई छुड़ा नहीं सकता। यही इसका पुरूषार्थ है।

※※※

३६- हृदय एवं मस्तिष्क वरदान

१. ओ३म् मूर्द्धानयस्य संसीव्यार्थवा हृदयं चयत्।
मस्तिष्क दूर्ध्व प्रैरयत पवमानोऽधि शीर्षतः।।

अर्थर्वेद १०/२/२६८

२. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शिष्णौ द्यौः समवर्तते।
पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोता तथा लोकांऽ अकल्पयन।।

सामान्य अर्थ-हृदय और मस्तिष्क को परमात्मा ने सिलकर जीव को तथा विचारों के निम्नस्तर से उठाकर दिव्यता के तरफ जाने को प्रेरित कर रहा है

'येनै शिष्णौ द्यौ समवर्तवः गय यजुवदं। ११

पुरूष सूक्त में सिर को द्यौ लोक अन्तरिक्ष उदर तथा पृर्थ्वी पद ऐसे उस महान पुरूष की कल्पना की गयीं है। हृदय को अन्तरिक्ष कहा गया है। इसी प्रकार मनुष्य का हृदय भी अन्तरिक्ष के समान होना चाहिए। इतना विशाल की उसमें सबको स्थान मिलना चाहिये। हृदय एक महान समुद्र है। क्लिष्ट और अक्लिष्ट भावों की तरंगें उठ रही है। जिनके उपयोग से मानव से महामानव बन जाता है। क्लिष्ट कर्म- विशाद, मद, मोह, चिन्ता शोक, आसक्तिं, ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, मद, मोह, निराशा और तृष्णादि हैं। अक्लिष्ट कर्म- श्रद्धा, भक्ति, दया, स्नेह, हर्ष, वैराग्य, विशालता, शान्ति, आनन्द, उदारता, सहृदयता, उपकार, सत्य, न्याय और प्रेम आदि हैं। इसी कारण परमात्मा ने हृदय को मस्तिष्क से जोड़कर बड़ा उपकार किया है। अन्यथा यह मानव भावुकतावश या अज्ञानवश सारे अनर्थ का कारण बन जाता है। और अगर इसे विवेक से जोड़ दें तो अक्लिष्ट और क्लिष्ट दोनों हमारे उत्थान में सहायक सिद्ध होते हैं। क्योंकि प्रतिपक्ष भाव से एक का एहसास बिना दूसरे के हो नहीं सकता जहां हम

दुख से दुखी होते हैं। वहीं हमें उन सुख के दिनों की याद दिलाता है। और उसके लिए प्रेरित करता कि हम अपने दुख के कारणों का चिन्तन तथा सुधार करें साथ ही परमात्मा तथा कर्म फल का भी ज्ञान कराता है। इस प्रकार दुख हमारे लिए वरदान सिद्ध होता है। भय हमारे लिए अनिष्ट कारक भी है। लेकिन बुराइयों से अन्याय से बचाता तथा परमात्मा की भी याद दिलाता है। इस विषय में भर्तृहरि लिखते हैं।

भोगे रोग भयं कुलेच्युति भयं, वित्ते नृपालाद भयं
मौने दैन्य भयं वले रिपुभयं, रूपे जरायाम भय
शास्त्रे वाद भयं गुणे खल भयं, कार्यै कृतान्ता भयं
सर्वे वस्तु भुवि नृणां भय प्रदमू, शम्भो पंदम निर्भयं।

विवेकी पुरूष के लिय यह किस प्रकार ईश्वर की याद दिलाता है। क्रोध शरीर को जलाता है। खून में विष पैदा कर देता है। पर वही शत्रु दुष्टों के संहार का कारण बनता है। राम जब ऋषियों की हड्डियों के ढेर को देखे तो उनकी दुर्दशा से द्रवित हुए, पर दूसरे ही क्षण, आवेश में आ प्रण कर लिया 'निश्चरहीन करो मही, भुज उठाय पन किन्ह' महाभारत में कर्ण के अधर्म युद्ध की दुहाई देने पर कृष्ण में मन्यु (रोष) उत्पन्न हुआ, उन्होंने कर्ण से कहा एक वस्त्रा द्रौपदी को सभा में घसीटना, शकुनी से जुआ खेलवाना, १३ वर्ष वनवास के बाद भी राज्य न देना, भीम को जहर देना, पाण्डव को लाक्षागृह में जलाने का विचार, अभिमन्यु को वीरों से घेर धोखा देकर मारना क्या धर्म था? अधर्मी के लिए मारने की चाह उत्पन्न कर अर्जुन का क्रोध बढ़ाना तथा कर्ण का मनोबल गिराना, बुरे कर्म तथा पाप अपने ही नाश के कारण बनते हैं। यह हृदय के भावों पर मस्तिष्क का प्रभाव हीं हिंसा को भी धर्म बना दिया।

अमीचन्द्र को दुर्गुण से छुटकारा एक शब्द, "तू हीरा है" लेकिन कीचड़ में पड़ा है। ने दिला दिया और वह गा उठा-

तुम सा न ज्ञानी और तुम सा न दानी,
इतना बड़ा दान जिसने दिया था,

तुम्हारी कृपा से अजी मेरे भगवन,
मेरी जिन्दगी में अजब पलटा खाया।

यह मस्तिष्क और हृदय के जुड़ने से ही पवित्रता आयी। इसलिए विदुर महाराज कहते हैं कि हमें विवेक के नियन्त्रण में रह हृदयगत भावों का व्यवहार करना चाहिए।

२. श्लोक-एक या द्वै विनिश्चित्य त्रिश्चतुर्भिवशं कुरूं।
पंच जित्वा विदित्वा षट् सप्तहित्वा सुखी भवेत।।

एक का तात्पर्य बुद्धि (मस्तिष्क ही) है। दो (कर्तव्य और अकर्तव्य) का निश्चय कर के चार (साम, दाम, भय, भेद) नीति पूर्वक और ३. (शत्रु, मित्र, उदासीन) को वश में करो और पांच (इन्द्रियों) को जीत कर छः (विग्रह, पान, आसन, सन्धि, कैदी रूप, समाश्रय रूप) गुणों को जानकर के सात (स्त्री, जुवा, मृगया, मद्य, कठोर वचन, दण्ड की कठोरता, अन्याय से धन का उपार्जन) को छोड़कर सुखी हो जावे। बिना विवेक के इन सुखों के कारण नहीं समझे जा सकते।

मद, मोह, विशाद, भय, शोक, क्रोध एवं इर्ष्यादि निश्चय ही दुख दायी तथा मरण धर्मा बन्धन के हेतु हैं।

पर यही विवेकशील व्यक्ति के जीवन को बदल देते हैं। कौन व्यक्ति जीवन में अविद्या के वशीभूत हो दुखों से नही घिर जाता है? उस समय मस्तिष्क ही उसे दुख समुद्र से उबारता है।

सुर्खरू होता है इन्सां ठोकरे खाने के बाद
रंग लाती है हिना पत्थर पर घिस जाने के बाद।।

इन्सान वही है जो ठोकर खाकर सुधर जावे, जो ठोकर पर ठोकर खावे वह हैवान है। जो लाख ठोकर पर भी न सुधरे वह शैतान है।

संस्कारों से तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं। पामर, विषयी और मुमुक्ष। १. मुमुक्ष जन पवित्र हृदय और शुद्ध विवेक युक्त जन्मजात ज्ञानवान होते हैं।

वे दैवी गुणों के भण्डार होते हैं। २. जो मनुष्य से मनुष्य योनि में आते हैं। वे विषय वासना (विलासिता) की वस्तु जुटाने में ही जीवन व्यतीत कर देते हैं। उन्हें उपदेश परम आवश्यक है और ३. जो पशु जीवन से मनुष्य जीवन में आते हैं वे पामर हैं। उनका जीवन केवल खाना पीना ही है।

दुर्योधन विदुर से कहते हैं-

शतायुसूक्त-पुरूषः सर्ववेदेषु वै यदा
ना प्रोत्यथ च तत् सर्वभायुः केनेह हेतुना। विदुर नीति

अर्थात्- सभी वेदों में आयु सौ वर्ष है तो क्यों नही मिलती?

विदुर ' अति मोहोऽतिवादश्च तथा त्यागो नराधिपः।
क्रोधाश्च्यात्म विधित्वा च मित्रदोहाश्च तानि षड। विदुर नीति

१. अत्यन्त अभिमान २. अधिक बोलना ३. त्याग का अभाव ४. क्रोध ५. अत्यन्त ही पेट पालने की चिन्ता और ६.मित्र द्रोह
ये छः तीखी तलवार हैं, जो आयु को काटती है। और विदुर -

'गृहीत वाक्यों नर्यावद वदान्यः। शेषान्न भोक्ता हयवि हिंसकश्च।
नानर्थ कृत्या कुलितः कृतज्ञः। सत्योमृदुः स्वर्ग मुपैति विद्वान।

१. बड़ों की आज्ञा मानने वाला २. नीतिज्ञ ३. दाता ४. यज्ञ शेष खाने वाला ५. हिंसारहित ६. अनर्थकारी कार्यों से बचना ७. कृतज्ञ ८. सत्यवादी ९. कोमल स्वभाव वाला। स्वर्गभागी या स्वर्गगामी होता है।

अतः मनुष्य मननशील प्राणी है। हृदय में सद्भाव तथा दुर्भाव की लहरें उठती हैं। वे एक दूसरे की पूरक हैं। उनसे विवेक द्वारा व्यवहार कर मनुष्य परम पावन बन जाता है और उस मोक्ष तक को सिद्ध कर सकता है। यह मस्तिष्क से हृदय के जोड़ने से ही सम्भव है। ऊपर उठने का उत्तम प्रयास है। मनुष्य मननशील प्राणी है। मननशीलता विवेक (मस्तिष्क) और मन का विषय है और इसी से वेद कहता है। तनमें मनः शिव संकल्पमस्तु' विवेक को पा सुकर्म द्वारा मन मोक्ष प्रदाता तथा अभाव में बन्धन का कारण बन जाता है।

३७- प्राणायाम द्वारा ज्ञान और संचालन

ओ३म् वीलु चिदारूजलुभिर्गुहा चिदिद्र वहिभिः।
अविन्द उस्त्रिया अनु।।

ऋग्वेद १/६/५

शब्दार्थ- हे इन्द्र जीवात्मा। तू आरूजलुभिः पीड़ा देने वाले शान्त करने वाले, वह्निभि जीवन धारण के कारण भूत प्राणों के द्वारा गुहा+चित छिपी हुई भी, उस्त्रिया ज्ञान किरणों को वीलु + चित शीघ्रता से ही अनु+अविन्द अनुकूलता को प्राप्त करता है।

शरीर की रचना परमात्मा ने बड़े ज्ञान पूर्वक किया है। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ीं का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, रूधिर शोधन, प्रचालन, विद्युत का स्थापन, जीव का संयोजन, सिरों रूप मूल रचना, लोभ नखादि का स्थापन, आंख की सूक्ष्म शिरा का ताखन ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृति स्वप्न सुषुप्ति की व्यवस्था, सब धातुओं के विभागीकरण की स्थापना और गति हमारी प्राणन क्रिया पर है। वायु के वेग से ही विद्युत भी उत्पन्न होती है। इसी से इस मंत्र में प्राण को अग्नि भी कहा है। प्राण के रहते शरीर गरम रहता है और निकलते ही ठण्डा हो जाता है। प्राण द्वारा ही हम शरीर को जगा गतिशील तथा जला गतिहीन कर नष्ट भी कर सकते हैं।

अगर हम विचार करें तो यह शरीर करीब बहत्तर करोड़ नाड़ियों से बंधा, उपनिषद कार बताते हैं। इन्हीं के माध्यम से रक्त का संचार तथा शोधन होता है। इसको क्रियाशील करने में वायु (प्राण) का बहुत महत्व है। उसी के दबाव से यह संचरण क्रिया होती है। और इसी प्राणों की गति पर ही मन की

गति निर्भर है। अतः प्राण के स्वस्थ्य होने से मन के सभी नाड़ी के संस्थान खुले रहते हैं और क्रियाशील होने पर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है। और उसी से उसका ज्ञान भी दिनोदिन बढ़ता है।

मनुष्य प्राणायाम द्वारा नाड़ी संस्थान को पूर्ण सक्रिय (उदिप्त) कर देता है। जहां वायु का प्रवेश नहीं होता वहीं रक्त का रूकाव हो जाता है। और इसी से ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है।

मनु- ध्यायन्तेध्यायमानानां धातु यथा मला
तथेन्द्रियाणां दहन्ययन्ते दोषाः प्राणात् निग्रहात।

अर्थ- धातुओं के मल, जैसे धौकनी से जलकर भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार प्रणायाम से इन्द्रियों के दोष जलकर शुद्ध हो जाते हैं। अथर्ववेद भी कहता है-

यदा गच्छात्य सुनीति मेवा यथा देवानां वस निर्भवति

अर्थ- जब साधक सुनीति प्राणचालक विद्या प्राप्त कर लेता है तो इन्द्रियों को वश में कर लेता है।

यह सुनीति क्या है? यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है। साधक जब अन्तर मुखी हो प्राणायाम चालक विद्या को जान लेता है। तब क्रमशः उसके बुद्धि का विकास और इन्द्रियों का वशीकरण होता है।

अथर्ववेद-

'अष्टचक्रा नवन्द्वारा देवानाम पुरी अयोध्या'

यह आठ चक्र क्या है? हठ योगियों ने इस पर अनेक भ्रान्ति पैदा की है। हर चक्र पर कमल विभिन्न दल तथा वर्ण की स्थापना कर इस क्रिया को बहुत ही जटिल बना दिया है। महर्षि दयानन्द ने भी इसी भ्रम में एक मूर्दे को गंगा से घसीट किनारे ला, तेज चाकू से इन कमल चक्रों की खोज की पर कुछ मिला नहीं। वहीं उस हठ योग की पुस्तक को गंगा में बहा दिया।

इसका अर्थ यह नहीं कि वेद मंत्र ही गलत है। ऐसी वात नही, चक्र है, अर्थात् अवरोधक ग्रन्थियां हैं। जहां पर क्रमिक सुषुम्ना का उत्थान काल में कुछ अवरोध होता है।

मूलाधार के पास ही महाशक्ति (कुण्डलिनी) स्थित है। प्रणायाम द्वारा अपान वायु का समान और समान का प्राण और प्राण का उदान में हवन करना ही प्राणायाम है। योगी जव प्राणायाम प्रारम्भ करता है तो इसका उद्देश्य सुषुम्ना को जगाना है। और उसको उर्ध्व गति देना है। मूलाधार में पृथ्वीतत्व विराजमान है। जव सवसे स्थूल तमोगुण का पृथ्वी तत्व में गति होती है तो इसके लक्षण सूक्ष्मदर्शी साधक को पृथ्वी का गुण गंध रूप में प्रगट होने लगता है। क्योंकि सभी तत्वों की सूक्ष्म तन्मात्राओं से ही शरीर वना है।

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'

अतः गुण गुणी से अलग नहीं रह सकता। पर यह अनुभव की वस्तु-आश्चर्यवत अनेक गन्धों का उदय होना है। उस समय हो सकता है, वही पर सुषुम्ना का अवरोध प्रतीत होता है कुछ ही दिनों के प्रयत्न के बाद स्वतः समाप्त हो जाता है। पुनः आगे उपस्थान चक्र आता है। वहां आने पर सुषुम्ना रूक जाती है। निरन्तर प्रयत्न करने पर वहां इस तत्व का अनुभव अनेक रसों की सूक्ष्मता के रूप में प्रतीत होता है तथा बाह्य रसों में विशेष रूचि हो जाती है। यह जल तत्व के शोधन का परिणाम है। आगे मणिपूरक नाभि चक्र में अग्नि तत्व का वास है इसके शोधन होने पर ध्यान में विशेष अनुभूतियां आती हैं जो कुछ काल में समाप्त हो जाती है। इसके आगे हृदय चक्र पर वायु तत्व का शोधन होता है। जिससे आन्तरिक गतिविधि का सक्रिय तथा मन की चंचलता क्रियाशीलता तथा रजोगुण वृत्ति बढ़ जाती है। तमोगुण का ह्रास होने लगता है। स्पर्शन इसका गुण होता है। वह अनेक प्रकार से प्रगट होता है। यहां से आगे गति होने पर कण्ठ चक्र का शोधन होता है। जिसे सरस्वती चक्र भी कहते हैं। यहां आकाश तत्व का शोधन होता है। इसका गुण शब्द है। साधक के वाणी में एक विशेष ओज आ जाता है। तथा अनेक विचारों से घिरा रहता और अन्तर समाधान खोजता रहता है। यहां तक आते-आते पंचतत्व शोधन होकर इन्द्रियों

के मल विक्षेप और आवरण ज्ञानाग्नि (प्राणाग्नि) में जल जाते हैं। सतोगुण बहुत जागृत हो जाता है और इससे आगे बढ़ने पर उदान वायु का दरवाजा खुल जाता है। आगे के विकास में तात्विक गुण तो नहीं रह जाते पर लक्षण मिलने लगते हैं। शरीर का हल्का हो जाना आदि। योगदर्शन में देखो जहां योगी कीचड़, कांटे पर भी चल लेता है। तात्पर्य शरीर का उदान वायु उर्ध्व हो जाता है। और कोई विशेष क्रम नहीं। दूसरे मंत्र में 'सुनीति' शब्द से प्राण चालक विद्या का तात्पर्य यही है। इसके द्वारा जगन्नाथ पथिक की पुस्तक 'ब्रह्मयज्ञ ब्रह्मसाक्षात्कार' में सुषुम्ना आगे के चक्र को बेधती आज्ञा चक्र पर नाशाग्र हो प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। इसके लिए एक रीढ़ की हड्डी में चीटी सी चाल अनुभव होती है जो गर्दन तक आती है। आगे बड़ी सूक्ष्मता से विचार करने पर प्रतीत होता है। यही त्रिपुटी पर आत्मा, परमात्मा, प्रकृति का ज्ञान यथावत प्रतीत होने लगता है। जिसका कारण विवेक-ख्याति है। इस प्रकार बुद्धि अपने क्रम से विकसित हो, सदबुद्धि, प्रभा, प्रतिभा, प्रज्ञा, मेधा, ऋतम्भरा रूपों में विकसित हो मनुष्य के ज्ञान को इतना विकसित कर देती है कि वह ऋतज्ञ हो जाता है। और वेद के रहस्यों को समझने लगता तथा उसकी पूर्णता को प्राप्त कर सामाधिस्थ भी हो जाता है।

यह सब साधना के द्वारा बौद्धिक विकास, प्रयत्न से ही सुलभ है। इसी से अष्टांग योग का यम नियमों का पालन करते दृढ़ आसन द्वारा प्राणायाम कर अपने ज्ञान को बढ़ा गायत्री मंत्र की सार्थकता, मेधा बुद्धि प्राप्त करना है। तथा ब्रह्मयज्ञ का भी यही रहस्य है। तुरीया अवस्था तथा कुण्डलनी इससे अलग है। उपरोक्त कार्य स्वसाध्य है पर कुण्डलनी आदि परमात्मा की कृपा पर है। इसलिए परमात्मा के कृपा पात्र बनो। परमात्मा की दया तो सब पर है पर कृपा विरलों पर ही हो पाती है।

इस प्रकार जो प्राणविद्या को सिद्ध कर लेता है, उसे रूद्र ब्रह्मचारी कहते हैं। वही दस प्राणों की गतिविधि तथा अन्तः करण का रहस्य समझ सकता है। क्रमिक रूप से तीन प्रक्रिया द्वारा बुद्धि विकास हो, योग के सारे रहस्य सामने आने लगते हैं।

प्रथम- विवेक ख्याति जो आत्मा परमात्मा और प्रकृति का ज्ञान देती है।

द्वितीय- ज्योतिषमती 'विशोका जो द्रष्टा और दृश्य का परिज्ञान करा शोक रहित कर देती है।' विदेहा आदि मुक्ति तथा सम्प्रज्ञात से अस्मिता ज्ञान तक पहुंचा देती है।

तृतीय- ऋतम्भरा प्रज्ञा जिसके द्वारा योगी को शब्द और प्रमाण की आवश्यकता नहीं, वह सत्य से इतना परिपूर्ण हो जाता है कि हर वस्तु यथावत ऋतरूप में स्वतः समझने लगता है। यहां आकर ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय मिट जाते हैं। जीवात्मा निर्वीज या निर्विचार स्थिति में पहुंच जाता है। इसके निरन्तर अभ्यास से उसे कैवल्य पद नाम मोक्ष का ज्ञान होता है और उसके सामने केवल एक ही विषय ईश्वर ही रह जाता है। इसी को मोक्ष पद भी कहते हैं और सांसारिक प्रपंच सब मिट जाते हैं। इसी को जीवन का परम पुरूषार्थ कहते हैं। इसमें प्राणायाम की भूमिका महत्वपूर्ण है। जो वेदोनुमोदित और योग दर्शन द्वारा निर्दिष्ट है।

※※※

३८. श्रावणी उपक्रम वेद प्रचार तथा चौमासे का निर्णय

वेद प्रचार उपक्रम तो लगभग ठीक ही रहा। पर चौमासा का निर्णय स्पष्ट नहीं हो पाया। कोई कार्तिक तक, कुछ ने पौष तक की कल्पना की और पौष में हस्त नक्षत्र कह डाला। इन बातों को सुन कर चिन्तन का विषय बन गया। यह कार्य वास्तव में देश काल परिस्थिति के अनुसार भारत जैसे देश में सही समय निर्णय करना तो कठिन है पर कुछ वैदिक आधार पर आर्यावर्त क्षेत्र अन्तर्गत निर्णय तो अवश्य होना चाहिए।

मनुष्य का ऋतुओं से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। उसकी जीवन चर्या ऋतु अनुकूल रह कर ही सुख कर सिद्ध हो सकती है। शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म में उत्तरायण (आदान काल) तथा वर्षा, शरद और हेमन्त (दक्षिणायन) या विसर्ग काल कहा गया है। इसमें चन्द्रमा बली होता है। जलीय औषधियां और जीव जन्तु का विकास काल है। इसे सौम्यकाल कहा जाता है और आदान काल में सूर्य की किरणें तीव्र हो स्नेहिल अंश का शोषण करती हैं। अतः इसमें रूक्षता बढ़ जाती है। पश्चिमी हवायें चलने तथा कटुतिक्त रूक्ष काषाय तत्व की वृद्धि से शरीर दुर्बल हो सकता है। अतः आहार का ध्यान देना आवश्यक है। विसर्ग काल में स्वाभाविक समकाल, वायु, वर्षा और मेघ से सूर्य का तेज कम हो जाता है। चन्द्रमा के बलवान होने से, मधुर, लवण, स्निग्ध तथा अम्ल रस की उत्पत्ति होती है, जो स्वास्थ्यकर होती है।

इसी क्रम को आयुर्वेद में उष्ण वीर्य तथा शीत वीर्य भी कहते हैं। इनकी उत्पति का काल निर्णय इनके स्वभाव गुण के अनुसार ही सम्भव है।

इसी आधार पर पृथ्वी में दो प्रकार की जनन (उत्पन्न होने की) क्षमता

या ऋतु काल कहा जाय तो ठीक ही होगा। इस काल का निर्णय वैदिक सम्पत्ति में रघुनन्दन प्रसाद ने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के माध्यम से ऋग्वेद के तीन मंत्रों के आधार पर मंत्र संख्या ऋग्वेद म. १/१६१/१३ दूसरा म. ७/१०३/१ और मंत्र ७ में वस्ता सूर्य को कहा है।

ऋतुओं ने पूछा हमें जगाने वाला कौन है?

उत्तर है श्वान और मण्डूक हैं। अव विचार करना है कि चौमासा से क्या तात्पर्य है?

शिशिर ऋतु से आदान काल होता है, और सूर्य स्नेहिल अंश का शोषण करता है। यहां से ही वृष्टि यज्ञ का शुभारम्भ होता है, जो होली के साथ आरम्भ होता है। इसे नवषसैष्टी यज्ञ भी कहते हैं यहां से भैषज्य यज्ञ का समापन काल है। इस समय जितना यज्ञ किया जाय, उतना ही लाभकर होता है। क्योंकि सूर्य के जल शोषण के साथ ही जल कण यज्ञ द्वारा सूर्य की किरणों से मिल जल शोधन करते जाते हैं। जिससे अन्तरिक्ष में शुद्ध जल के भण्डारण में सहयोग होता है। यह क्रिया होली से ८५ दिन तक होती है। इसके बाद ऋतु परिवर्तन के कारण चक्रवात तथा मानसूनी हवायें चलने लगती हैं। यह आषाढ़ वर्षा ऋतु का सन्धि काल है। आर्द्रा नक्षत्र लगभग इसी के मध्य में आती है। जो वर्षा की सूचक होती है। अतः आर्द्रा में विशेष वृष्टि यज्ञ का आयोजन होना चाहिए। इसके यज्ञ से मानसून प्रभावित होता है, तथा अच्छी वृष्टि होती है। इसी से कृषि अनुभवी घाघ ने कहा है कि-

रोहिणी वर्षे मृग तवै कछु कछु आर्द्रा जाय।
घाघ कहै सुन कृषक जन श्वान भात ना खाय।

अर्थात रोहिणी मानसून की सूचक है। अगर इसमें जुताई योग्य बारिश हो जाये और मृगशिरा पूर्ण तप जाय तो आर्द्रा के कुछ जाने पर जल वृष्टि होने से इतना धान होता है कि कुत्ता भी भात नहीं खाते। आज़ के कृषि से पहले हमारी प्राचीन कृषि इसी आधार पर होती थी। आर्द्रा के (लेव का पलेवा ले धनकुवारी साठी आदि की बुवाई) वृष्टि के साथ होती थी। इसी वर्षा से गढ्ढों

में पानी आ जाने से मेढ़क भी पृथ्वी से निकल दादुर ध्वनि करने लगते हैं, जो वर्षा प्रारम्भ काल के सूचक हैं। इसी लक्षण के अनुसार साधु, सन्यासी, विद्वान, व्यापारी और राज्य कर्मचारी अपने कार्य को समेट कर आषाढ़ पूर्णिमा तक घर आ जाते, साधु ब्रिन्द भी आबादी में आ जाते थे। कृषि कार्य शीघ्र ही कृषक सम्पन्न कर लेते थे। आषाढ़ी खेती का उत्तम समय यह आर्द्रा की वृष्टि ही थी। मण्डूक के साथ जो भी जल-चरीय जन्तु हैं। सबका ऋतुकाल भी यही होता है। पृथ्वी की जनन शक्ति और इसमें समानता है। अब चन्द्रमास और सौर मास के भेद के कारण महीनें इधर उधर हो सकते हैं। पर जीव जन्तु के नियम अपरिवर्तनीय है। इसी से ऋतु को जगाने वाला मण्डूक है। यहीं से चौमासा प्रारम्भ होता है।

इसी प्रकार वर्षा ऋतु के समापन का तथा शरद ऋतु के आगमन का समय कुत्ता (श्वान) अपने ऋतु काल से सूचित करता है। जिससे वर्षा ऋतु का जाना और शरद का आना, रबी की बुआई (खेती) का समय होता है। तथा हिंसक जानवर का ऋतु काल, औषधि बनस्पति उग्र वीर्य का ऋतु काल भी यही है। श्वान, गीदड़, बाघ और सिंह आदि। यह चित्रा नक्षत्र से चना, मटर आदि के बोने से प्रारम्भ होता है।

अतः आर्द्रा से लेकर पुनर्वशु, पुष्प, श्लेषा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी तक वर्षा जोर पर रहती है। उत्तरा से उत्तरायण होने लगता है। अर्थात् मानसून लौटने लगता है, और अखिरी नक्षत्र हस्त के बरसते-बरसते मानसून लौट जाता है। इसके बाद थोड़ी बहुत बारिश हो सकती है। पर यह ऋतु विसर्जन का संधि काल है। बुआई का कार्य रूकता नहीं, होता रहता है। यह हस्त नक्षत्र आश्विन पितृ पक्ष (कृष्ण पक्ष) में अधिकतर होती है। इसी से चौमासा का समापन समझ विद्वान ब्राहमणों का अमावस्या को तर्पण और श्राद्ध गृहस्थ करते हैं। उनको अच्छी प्रकार भोजन दान, वस्त्र आदि देकर विदा करते और अपने कृषि कार्य खरीफ की कटाई तथा रबी की बुआई में लग जाते हैं। यह क्रिया (पितृ श्राद्ध) पौराणिक आज भी करते हैं। पर रूप बदल गया है। जीवितों के स्थान पर मरे पितरों के नाम पर इसे तीन से तेरह या अधिक

ब्राह्मणों को खिलाते, दान देते हैं। उनके मान्यतानुसार मरे हुए पितरों को भोजन मिलता है जो अवैदिक है।

दूसरा प्रमाण श्री राम आदर्श, मर्यादित तथा वैदिकी पुरूष है। वनगमन में उन्होंने सीता खोज के समय ऋषिमूक पर्वत पर चौमासा बिताया था। और इसी क्वार में काश फूलते हैं। उसे देखकर राम कहते हैं लक्ष्मण से -

वर्षा विगत शरद ऋतु आई
लक्ष्मण देखो परम सुहाई
फूले काश सकल दिशि छाई
जन वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई।

और उन्होंने सुग्रीव द्वारा वानरों को सीता की खोज के लिए भेजा और इसी प्रकार आश्विन देव पक्ष में चौमासा खत्म कर युद्ध का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

निर्णय- यह तो निश्चित है कि चौमासा का तात्पर्य वर्षा से उपस्थित संकट से बचने के अर्थ ही है, चाहे राजा के लिए हो या क्षत्रिय या वैश्य, साधु सन्यासी या विद्वान जो वेद प्रचारार्थ परिभ्रमण करते थे। वृष्टि, जल भराव, नदी, नाले के उफान से बचने के लिए ही है। यह निर्विवाद हैं। अब काल निर्णय में आदान काल शिशिर से प्रारम्भ (माघ, फाल्गुन) होता है। माघ सन्धि काल है। इसमें सूर्य की किरणें स्नेहिल तत्व को सुखाने में इतनी सक्षम नहीं हैं। यो तो थोड़ा बहुत बारह महीने सुखाती हैं। अतः फाल्गुन से तेज हवाओं से पतझड़ आदि होने लगता है। होला यज्ञ (वृष्टि यज्ञ) का समय फाल्गुन पूर्णिमा से ही है। इससे ठीक ८५ दिन पर गंगा दशहरा पड़ता है। इसके साथ रोहिणी नक्षत्र की वृष्टि और आम वगैरह का पकना आरम्भ होता है। अतः रोहिणी नक्षत्र मृग शिरा नक्षत्र वर्षा का संधि क़ाल है। इसमें मौसम परिवर्तन के लक्षण चक्रवात वगैरह बहुत चलते हैं। अभी बारिश होने पर भी मेढकों का यह समय नही है। इसके बाद आर्द्रा का आगमन होता है। जो अधिकतर आधे अषाढ़ के लगभग ही होता है। इसी वर्षा से धान की खेती होती है, तथा मेढकों के प्रगट होने या

ऊपर आने से दादर ध्वंनि (आवाज) आती है। यह जलीय फसल जमने तथा जलीय जन्तु का ऋतु काल प्रारम्भ होता है। उष्मा बहुत बढ़ जाती है। समय-समय पर वर्षा वार-बार होना प्रारम्भ हो जाती है। इस अवसर पर कृषक कृषि कार्य से तथा अन्य आश्रमी सुरक्षा के लिए बस्ती में आ जाते हैं।

कृषि कार्य सम्पन्नता के साथ कृषक या आश्रमी के कार्य सम्पंन्न होने का समय आषाढ़ पूर्णिमा के लगभग है। अव तक कोई इधर उधर वाहर नहीं रहता तथा कार्य भी सम्पन्न कर लेता है। यहीं से गुरूओं का सम्मान तथा कथा, प्रवचन प्रारम्भ हो जाता है। यह कार्य वर्षा काल तक रहता है। इसमें वर्षा की मुख्य नक्षत्र आर्द्रा, पुनर्वशु, पुष्प, आश्लेशा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी है। उत्तरा फाल्गुनी से मानसून लौटने लगता है। हस्त तक पूर्ण रूप से लौटने का समय है। लौटते समय कुछ वर्षा भी हो सकती है। यह हस्त नक्षत्र आश्विन महीने के पितृ पक्ष में ही पडता है। इस नक्षत्र के साथ काश में फूल के साथ वर्षा का अन्त और धान क्वारी की कटाई तथा चना मटर की बुवाई देव पक्ष से ही प्रारम्भ हो जाती है। गेहूं जो कार्तिक पूर्णिमा तक बो जाते थे। अव तो नयीं फसलों के साथ वह बुआई का काल १५ दिसम्बर तक निश्चित है। वौने धान से समय ज्यादा लगने से खेत खाली न होने पर दलहनी फसल समय पर नहीं बो, जाती जिससे देश दाल के संकट में चल रहा है। यह काल भी ८५ दिन का होता है। उदाहराणार्थ श्रावण भादों ६० दिन, पितृपक्ष १५ दिन और आषाढ़ आर्द्रा का १० दिन, ८५ दिन ही वृष्टि काल है। शरद ऋतु वर्षा और हेमतं का संधि काल है। चारों मासों का सम्बन्ध होने से इसे चौमासा कहा गया।

२. श्वान का यहां ऋतुकाल प्रारम्भ हो जाता है। जितने हिंसक जानवर श्वान, भेड़िया, गीदड़, बघेरा, सिंह, सर्प आदि उग्र स्वभाव वाले तथा उष्ण वीर्य औषधि वनस्पति अन्नादि इसी समय उत्पन्न होते हैं। यह पशुओं की क्षमता से पृथ्वी की जनन काल का ज्ञान है। जो ऋग्वेद के मन्त्रानुसार है।

३. राम हमारे वैदिक आदर्श है। उनकी जय भी बोलते हैं। चौमासा ऋष्यमूक पर्वत पर बिता, इसी देव पक्ष में लंका पर चढ़ाई की थी।

४. इसी दिन पौराणिक श्राद्ध और तर्पण पितरों का करते हैं। जो रास्ता भटक कर मृतकों का करने लगे। पर खिलाते और दक्षिणा ब्राहमण और साधुओं को ही देते हैं। अतः चौमासा आर्द्रा से हस्त नक्षत्र, आश्विन पितृ पक्ष तक, का समय ही निश्चित हो सकता है। जिसमें वर्षा ऋतु के दो महीने और ग्रीष्म के दस दिन तथा शरद के संधि के १५ दिन आते हैं।

श्रावणी उपक्रम यज्ञोपवीत संस्कार तथा वेदारम्भ संस्कार तो श्रावणी पूर्णिमा को होते हैं, और ब्रह्मचारियों के पढ़ने के लिए उत्तम ऋतु शरद, हेमन्त और शिशिर हैं। वसन्त मध्यम तथा ग्रीष्म भयानक की सूचक है। अतः बसन्त में ही परीक्षा समाप्त कर विद्यार्थी को भीषण ग्रीष्म के पहले ही छोड़ देते हैं। आधुनिक विद्यालयों का इस समय दाखिला (प्रवेश) काल जुलाई रखे हैं। यहां पर गुरूकुलों का प्रवेश काल श्रावण है। जो सौम्य मौसम का ध्यान देकर रखा गया है। श्रावण प्रवेश काल तथा पूर्णिमा तक प्रवेश के बाद उपनयन संस्कार करा शिक्षा कार्य प्रारम्भ हो जाता है। तथा इनका भी परीक्षा काल वसन्त ही है। ग्रीष्म स्वास्थ्य तथा बुद्धि के लिए ठीक न होने से निषेध है।

५. घाघ का एक दृष्टान्त वर्षा का है ये प्राचीन कृषि के मर्मज्ञ घाघ और भड्डरी थे, जिन्होंने कृषि, पशु, वर्षा, यात्रा आदि के अनेक अनुभव किये हैं वे भी विचारणीय है।

घाघ- चढ़ती वर्षा आर्द्रा से उतरती वर्षा हस्त तक होने से गृहस्थ सुखी होता है।

अपने अनुमान तथा लौकिक और वेद मन्त्र के आधार पर निर्णय है। अन्य प्रमाण भी दिये तथा विचारे जा सकते हैं। यह शोध के लिए विद्वानों को प्रेरणाप्रद हीं होगा हानिकारक नहीं। साथ ही वेद की सार्थकता, लौकिकता और व्यवहारिकता तथा देश काल और परिस्थिति के अनुकूल होना ही है। अतः निर्णय दस दिन आषाढ़ आर्द्रा नक्षत्र का और आषाढ़ और श्रावण का ६० दिन तथा पितृ पक्ष का १५ दिन ही चौमासा सिद्ध होता है।

***

३६. चौमासा काल निर्णय

ऋतुओं का काल निर्णय- दो सिद्धान्त पाये जाते हैं। एक चन्द्रमा की गति से, एक सूर्य की गति से।

चन्द्रमा २७ से २८ दिन में पृथ्वी का चक्कर लगाता है तथा नक्षत्र भी २७ है। अतः चन्द्र मास २७ दिन का हीं होता है १२ महीने का ३ दिन बच ३६ दिन हो जाता है। इस प्रकार सौर मास से चन्द्रमा एक माह बढ़ जाता है। अर्थात् आर्य १ वर्ष = १२ माह का होता है, तो मुसलमान १ वर्ष, १ माह अर्थात् १३ माह का होता है। इसी से उनके त्यौहार स्थिर नही रहते १ माह खिसकते रहते हैं। उनका साल २७x१२ - ३२४ दिन का होता है। ये ३६ दिन का १३ महीना बन जाता है। तब ३६० दिन का वर्ष बनता है।

सौर वर्ष बारह राशियों के आधार पर बारह महीने बनते हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन। इन्हीं के आधार पर मेष बैशाख से प्रारम्भ है मीन, चैत्र तक महीने बनते हैं इन्हीं महीनों से छः ऋतुएं बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर तथा तीन मौसम गर्मी, वर्षा और शीत काल होते हैं। इनके महीने ३० दिन के होते हैं। अतः साल ३६० दिन का होता है फिर भी सूर्य की गति ३६५ दिन में अपने परिधि पूर्ण करती है। अतः इस ५ दिन तथा २७ नक्षत्रों के अभाव को तीसरे वर्ष मल मास के आने से महीनों तथा पूर्व त्यौहार तो स्थिर रहते है। पर दिनों में १०-५ दिनों का हेरफेर हो जाता है। यह मलमास कोई पौराणिक जोड़ नहीं है। बल्कि वैदिक है। उदाहरण में बारह मास यज्ञ करने के विधान में मलमास में भी यज्ञ का विधान है "ऋतु वर्णन" स्वामी वेद रक्षानन्द, प्रथम संस्करण, पेज संख्या ४६/मंत्र यजुवेद २२/२३

मधवे स्वाहा, माधवाय स्वाहा, शुक्राय स्वाह, शुचये स्वाहा।
नमसे स्वाहा, नमस्यास स्वाहा, स्नाहोजाय स्वाहा।
सहसे स्वाहा, सह स्याय स्वाहा, तपसे स्वाहा, तपस्यायस्वाहा।
इसस्यते स्वाहा।।

यजुर्वेद/२२/३१

अर्थ- हे मनुष्यो आप (मधवे) मधुर आदि गुण के उत्पादक चैत्र मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ करें (माधवाय) वैषाख मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शुक्राय) शुद्धि करने वाले जष्ठेमास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शुचये) पवित्र करने वाले आषाढ मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (नभ से) जल बरसाने वाले श्रावण मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (नमस्याय) नभ से विद्यमान भाद्र पद के लिये स्वाहा यज्ञ क्रिया (इषाय) अन्न के उत्पादक आश्विन मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (सह से) जल दायक मार्ग शीर्ष मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (सहस्याय) बल से श्रेष्ठ पौष मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (तप से) तप के उत्पादक माघ मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया और (अहसस्यतपे) महीनों में श्लिष्ट पालक मलमास के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया का अनुष्ठान करो। इसके साथ ही अगले मंत्र ३२-३३-३४ में इसके लाभ और फल को बताया है।

राशि का मान तो प्रतिमाह ३० दिन तथा मलमास से पूरा हो जाता है। अब नक्षत्र का मान कैसे निकालें? इसके लिए विचारकों ने २७ नक्षत्रों में १२ का भाग दे दिया। इस प्रकार एक राशि पर २/१/४ नक्षत्र का योग आता है। सुविधा के लिए हर नक्षत्र को चार चरण में विभक्त कर दिया और इसी के आधार पर चार अक्षर जैसे - चू, चे, चो, चा अश्वनी, ला, ली, लू, ले भरणी अ,इ,उ,एं कृतिका इस प्रकार २७ नक्षत्र के चार चरण कर डाला। अब राशि का समय जाननना आसान हो गया। २/१/४ का मतलब चार चरण अश्विनी का ४ चरण भरणी का दूसरी १ चरण कृतिका तीसरी का समय एक राशिं हुआ। मेष अश्वनी + भरणी + कृतिका का एक चरण ९ चरण।

अब नक्षत्र मान जानने के लिए ३ दिन एक चरण तो ३x४x१२ दिन

यहीं भोग, नक्षत्रों का पूरे वर्ष में हुआ। महीना एक राशि पर ३० दिन का होता है। १२ २/१/२ ३० हुआ। इस प्रकार निकला एक नक्षत्र लगभग १२ दिन भोग करती है।

अव चौमासा का निर्णय करो। आर्द्रा नक्षत्र जो लगभग आषाढ़ के मध्य में आती है। इसकी वृष्टि के साथ ही मेढक बाहर आ वर्षा के आगमन की सूचना देते हैं। यह इनका तथा धरती में धान बोने, जमने का ऋतु काल कृषक के सूचनार्थ है। वेद के मंत्रानुसार मेढक ऋतु को जगाता है। तात्पर्य है यहां से मानसूनी वर्षा से सम्बन्ध वाली आठ नक्षत्रें हैं। आर्द्रा, पुर्नवसु पुष्प, आश्लेषा, मधा, पूर्वा फाल्गुनी यहां तक तो मानसून चढ़ता और वरसता है। इसके बाद उत्तरा फाल्गुनी से मानसून वापस जाने लगता है। और वापस जाने वाला समय हस्त नक्षत्र आखिरी है। उत्तरा और हस्त को मिलाकर वर्षा काल की मानसूनी हवाओं के आवागमन का काल ८x१२=९६ दिन हुए, यही चौमासा का समय है। इसी समय का निर्णय अमेरिकन विद्वानों ने ८५ दिन किया है। जो होला के आधार पर है। दिन ९६ अवश्य है पर वर्षा काल ८५ दिन ही है। क्योंकि व्यवहार में देखा गया है कि यह ११ दिन का अन्तर अक्सर हो ही जाता है। कभी-कभी आर्द्रा प्रारम्भ में वरसती है। कभी-कभी अन्त में, हस्त भी कभी-कभी पूरी नक्षत्र बरसता है। कभी-कभी बिल्कुल नहीं अतः यह सन्धि काल में ही लिया जा सकता है। इस प्रकार आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु के कुछ दिन, श्रावण भाद्रपद के पूरे दिन और हस्त पितृपक्ष में ही अधिकतर पड़ता है। मलमास आदि में कभी-कभी टलता है, मिलकर चौमासा कहा जाता है। इसके बाद स्वान (कुत्ता) मंत्रानुसार वर्षा जाने की सूचना देते हैं। और चित्रा के साथ मटर, चना आदि की बुआई तथा धान कुवारी की कटाई प्रारम्भ हो जाती है। स्वाती में जौ आदि बो दिया जाता था। इसी को आधार ले वर्षा काल घाघ कहते हैं-

चढ़त वर्षे आर्द्रा उतरत बरसै हस्त।
कितनों राजा कर लेवे फिर भी सुखी रहे गृहस्थ।।

इस प्रकार मंत्रानुसार नक्षत्र काल है। दूसरा कास का फूलना, अमावस्या का पितृ श्राद्ध और तर्पण। राम का लंका पर चढ़ाई करना, सभी इस काल

निर्णय के प्रमाण सिद्ध है। इस प्रकार समय गणना से भी आर्द्रा से हस्त तक आषाढ़ के कुछ भाग श्रावण भाद्रपद और पितृ पक्ष या हस्त नक्षत्र तक का काल चौमासा का समय है। और कार्तिक एवं पौष तक वेद कथा ही सुनोगे बैठ कर तो सारे आश्रमी मिट्टी खायेगें? अतः इसके बाद व्यापारी सामान के लिए बाहर जाता, राजा युद्ध के लिए जाता, कृषक खेती में लग जाता। वानप्रस्थी शिक्षा कार्य करता रहता है। पर सन्यासी चल आश्रम है। स्थान को छोड़, परिवार, वन या चलता-फिरता आश्रमियों का आतिथ्य लेता, और प्रचार करता है। यही इसकी व्यवस्था है।

⁂⁂⁂

४०. श्रावणी उपक्रम एवं वैकल्पिक व्यवस्था

मैं १६ अगस्त २००५ को वेद प्रचार सप्ताह में आया और ५ दिन के सुनने के बाद यह निर्णय नहीं हो पाया कि उपक्रम क्या है? और चौमासा क्या है? अतः इस पर चिन्तन से जो विचार आये वही प्रेसित है। विद्वान विचार करें तथा आवश्यक सुधार भी कर सकते हैं।

उपक्रम को मानने के लिए पहले 'क्रम' को जानना पड़ेगा। वैदिक जीवन का क्रम क्या है? इस पर विचार करने पर 'वर्णाश्रम व्यवस्था ही वैदिक जीवन क्रम है, जो पूर्ण रूप से वेदों पर आधारित है।' इसे परम्परागत व्यवस्था भी कह सकते हैं। इसे वैदिक संस्कृति भी कह सकते हैं। इसे धर्म नाम भी दे सकते हैं। इस वैदिक परम्परा में कोई दोष न आने पावे या आने पर उसे व्यवस्थित एवं मर्यादित रखने के लिए जो वैकल्पिक व्यवस्था की जाती है, उसी का नाम उपक्रम है। जैसे प्रधान, राष्ट्रपति व प्रधान मंत्री के व्यस्त रहने पर या न रहने पर उप प्रधान, उपराष्ट्रपति एवं उप प्रधानमंत्री वैकल्पिक व्यवस्था है। इसे उपक्रम कह सकते है। पर यही उपक्रम अगर ज्यादा उपयोगी, हितकारी और आवश्यक हो जाता है तो इसे संस्कार धर्म या मर्यादा भी कह सकते हैं। और परम्परा में आवश्यक समझ जोड़ भी लेते हैं। लेकिन वही सम-सामयिक व्यवस्था समस्या समाधान के बाद भी रच, पच जाने से अगर जनता नही छोड़ती तो वह रूढ़ि बन जाती है। और यह विवेकहीन रूढ़ि ने लगभग सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों को घायल किया है। बतौर उदाहरण- हम दो-चार उदाहरण देते हैं-

१. अरब देश में पानी के अभाव की वजह से बधने का उपयोग हुआ, जिससे एक बूंद पानी भी व्यर्थ न जावे और स्नान के स्थान पर उजू से ही पाक होकर नमाज आदि पढ़ लेते हैं। इसी के आड़ में बहुतों ने नहाना ही छोड़ दिया उनके शरीर से बदबू आने लगीं, तभी शायद मुहम्मद ने सप्ताह में एक दिन स्नान

सरियत में लिख दिया। अरब के लिए वह आवश्यक था। धर्म भी बन सकता संस्कार भी कह सकते थे। परम्परा भी बन सकता था। अतः वह धर्म न होते हुए उपक्रम था। परन्तु भारत में आने के बाद जहां पानी इतना पर्याप्त है। फिर भी कट्टर मुसलमान भाई इसे मजहब समझ सप्ताह में एक दिन ही स्नान करते हैं। भारत के लिए इसे रूढ़ि कहेगे। रूढ़ि का तात्पर्य ही है 'विवेकहीनता' ।

२. पहले तो भारत में राजपूत काल जिसे साहित्य में वीर गाथा काल कहते हैं। राजपूतों का बल और धन बढ़ा तो आपस में ही एक दूसरे की बेटी का हरण करके शादी करने लगे, जो आपसी प्रेम और एकता को नष्ट कर डाला तथा जिसकी बेटी जबरन हर ली जाती थी, उसमें हीन भावना बढ़ी और बदला लेने का भाव जागा। जिसका प्रमाण पृथ्वीराज, जयचन्द्र के वजह से मुहम्मद गोरी द्वारा आंखें निकाल के सिकन्जे में जकड़ कारावास का दुख भोगना पड़ा। वहीं सें मुस्लिम राज्य की नींव पड़ी। इस विपत्ति से बचने के लिए राजपूतों ने वैकल्पिक (उपक्रम) निकाला। जन्मते ही प्रसव गृह में दाई द्वारा बच्ची की घाँटी दबा कर मार डालना ताकि हम राजपूत की बेटी का डोला फनाने वाला कोई वीर नहीं होगा। बाद में यही रूढ़ि बन गयी। और बहुत दिनों तक राजपूतों में यह चलन रही। उदाहरण- खेमसिंह भजनोपदेशक कह रहे थे कि हमारे आर्य समाजी होने के बाद एक बेटी मैंने इस क्रिया से रोका तो बहुत दिनों के बाद उस गांव में उस बेटी को ब्याहने बारात आयी थी। तब से रूका।

३. मुसलमानों के आधिपत्य के बाद मुस्लिम मजहब में चार बीबी और रखैल अनेक रख सकते हैं। जिसके कारण किसी हिन्दू की बहूबेटी को सुन्दर देख राजा अधिकारी गण या वैसे भी उसे डोला फनाने का आदेश देते थे, बेटी कातर दृष्टि से भाई और पिता के तरफ अपनी रक्षा की गोहार करती थी, फिर भी माता पिता मजबूरी में विदा कर देते थे। कुछ भाइयों ने अनेक प्रकार से रक्षा की। इसी से रक्षा बन्धन त्यौहार चला, जो भाई के लिए आज भी प्रेरणा दायक है। गांव के एक मेस्तर की बेटी भी, युवकों की बहन तथा वृद्धों की बेटी होती थी। पर आज यह केवल दिखावा और व्यापारियों का एक रक्षा बेचने का व्यापार रह गया है। आज गांवों की बहन बेटी, गांवों में ही लूटी जा रही है। तुष्टिकरण

की नीति के कारण राजनीतिक पार्टियों का यह कहना है कि हूमायूं का चितौड़ की महारानी की रक्षा की थी, यह धोखा है। वह संधि पत्र था जो कि चितौड़ के हार के बाद हूमायूं भी उस आपत्ति से नही बचता, इसलिए राजनीति थी कि दूसरे के खर्च पर अपने दुश्मन को हराना। यह उपक्रम ही आज प्रेरणादायक होते हुए भी आचरण में न होने से रूढ़ि बना है।

४. मुसलमानों से अस्मत की रक्षा तथा डोला फनाने से वचने के लिए ब्राह्मणों ने बाल विवाह का आदेश दिया।

'अष्ट वर्षा भवेद्द गौरी नववर्षा चरोहिणी'

आदि 'सत्यार्थ प्रकाश' में यह वैकल्पिक व्यवस्था (उपक्रम था) बाद में बाल विवाह रूढ़ि बन गया। जिसका परिणाम भी टी.बी. जैसा भयंकर रोग हुआ और विधवाओं की लाइन लग गयी। समाज दुषित हुआ तथा विधवायें विधर्मियों के हाथ जाने लगी ऐसी हालत में उपक्रम (वैकल्पिक व्यवस्था) निकाला गया कि उसे पति के लाश के साथ उसकी विधवा को जला दिया जाय। इसके लिए सतियों की महिमा गायी गयीं, और बाद में यह घृणित कर्म राजा राम मोहन आदि ने रोका। महर्षि ने भी इस बाल विवाह और सति प्रथा की घोर निन्दा की। कानून बनने पर भी रूढ़ि चलती रही। और छिटपुट घटनायें भी होती रही है। पति के सामने स्त्री को कुछ कह दो वह सह लेगा पर भाई नही सह सकता।

कौरव सभा में द्रौपदी के साथ अनर्थ हो रहा है, पांच भाई पाण्डव हैं पर अनर्थ सह रहे हैं, लेकिन भाई कृष्ण आते ही रोष (मन्यु) से अरे पापियों पाप का घड़ा नहीं भरा, यह क्या कर रहे हो? १३ वर्ष का वनवास, भीम को जंहर, लाक्षा गृह का जलाना, शकुनि का जुआ फिर भी पाप पूरे नहीं हुये, कुल वधु के साथ 'मनू' श्राप से कुल का नाश हो जाता है। इस प्रकार कृष्ण ने मन्यु से कौरवों का मनोबल गिरा दिया, वे आगे कुछ न कर सके। यह है भाई की रक्षा अतः आज भी यह प्रेरणा दायक है तब तो रक्षा बन्धन सार्थक है अन्यथा रूढ़ि ही समझो।

इसी प्रकार पंचमहायज्ञ सोलह संस्कार आदि उपक्रम है। जो वैदिक धर्म

को मर्यादित करने वाले हैं। अतः ये संस्कार बन परम्परा से जुट धर्म कोटि में आ गये हैं। इसी प्रकार चौमासा भी है। यह उपक्रम है। पहले इसका काल निर्णय आवश्यक है चौमासा भी वैकल्पिक उपक्रम हीं है। प्राचीन काल में सामान लाने का साधन नदी और नाव ही थी। अतः राजा के लड़ाई के राशन, अस्त्र शस्त्र तथा व्यापारियों के माल नदियों से जाते थे पर अब रेल, ट्रक, बस अनेक साधन हवाई जहाज तक हैं। अब वर्षा वैसी बाधा नही है। हर आदमी अर्थ व्यवस्था से १२ महीने परेशान है। कृषक कृषि से खाली हो डेयरी तथा सब्जी की खेती आदि कर पैसे के लिए बारह महीने शहर को दौड़ लगा रहा है। शहरों में मजदूरी करने भी चला जाता है। व्यापारी बारह महीनें माल मंगा रहा है। राज्य कार्य भी कोई बाधा नहीं, अतः यह चौमासा अब केवल रूढ़ि रह गया है। हां वेद प्रचार होना चाहिये वह दौड़ती दुनिया में जब भी समय मिले वर्ष भर करना चाहिए।

⁂⁂⁂

४१. योग सिद्धि एवं सुषुम्ना

ऋषियों ने अन्तरमुखी हो आत्मदर्शन तथा परमात्म ज्ञान के बाद ही अपने अनुभवों को योग दर्शन के माध्यम से जन सामान्य तक पहुंचाने का प्रयत्न किया। यह उनका बहुत बड़ा उपकार है। वास्तव में मनुष्य योग दर्शन के सूत्रों को रट रहा है। तथा मंत्रों को पढ़ कर ही संध्या का फर्ज निभा रहा है। चाहे ब्रह्मचारी हो या सन्यासी।

जीवन की दो धारायें हैं एक बाह्य् जिसमें हम व्यवहार जगत को सिद्ध कर सकते हैं दूसरी अन्तर्वृत्ति जिसमें आध्यात्म जगत को सिद्ध कर सकते हैं। इसके लिए अवरोधक तत्व हमारे शरीर की विकृतियां हैं। हम ऊपर की मांस पेशियों को देख कर ही अपने को स्वस्थ्य समझ रहे हैं। जो हमारी उल्टी समझ है। ताकत मांसपेशियों या मोटापे में नहीं है। ताकत तो प्राणों में है। ताकत अधिक भोजन से नहीं बल्कि मितभुक, ऋतभुक और हितभुक में है। साधना के लिए विरजानन्द बनिये। उस हड्डी से भी दयानन्द पर लट्ठ चला देते हैं। प्राणों को शक्तिशाली बना कर हम अपनी शारीरिक क्षमता बहुत बढ़ा सकते हैं। शरीर में ७२ करोड़ से भी अधिक नाड़ियां हैं। उनमें रक्त का संचार यथावथ होना चांहिए। अगर उनमें अवरोध होगा तो व्यक्ति अवश्य ही रोगी होगा। तथा प्राण अग्नि है। इसी से स्नेहिल तत्व का क्षय भी सम्भव है। मधुमेह या ब्लडप्रेशर के मरीज को डॉक्टर वजन घटाने की राय ही पहले देता है। अतः रात्रि का आहार अवश्य सूक्ष्म करनां चाहिए। जिससे अर्द्ध रात्रि तक ही भोजन अच्छी प्रकार पच जाय। इसके बाद अपने को ताजा कर चिन्तन में लगने का यथा शक्ति प्रयत्न करना चाहिए। परमात्मा के चिन्तन में विषम स्वर बाधक होते हैं। अगर सुषुम्ना का योग कर सके तो, चिन्तन आसान हो जायेगा इसके लिए हर प्राणायाम को दोनों नाड़ियों से बारी-बारी के प्राणायाम करने का बार-बार

प्रयत्न करना चाहिए। जिससे सुषुम्ना का उदय हो अगर इतना आप कर लिए तो आप कुछ कर सकते हैं। यह कार्य चाहे कपाल भाति हो, अनुलोम-विलोम तो है ही। वाहय वृत्ति स्तम्भ तथा भ्रामरी में भी प्रयोग किया जा सकता है। अगर यह सिद्ध कर लें तो 'समत्वं योग उच्चते' आप हमेशा सतोगुण में रहने लगेंगे। और जीवन की उठाव पटक वहुत कम हो सकती है। इसी सतोगुण वृत्ति की पूर्ण अवस्था का नाम ज्योतिषमती विशोका है। जहाँ अहंकार के लय होने पर, पंच तत्व, पंच तन्मात्राएं, एकादश इन्द्रियां अपने कारण अहंकार में लय होकर बुद्धि महदभूत (चित) अपने कारण में लीन हो जाती है। बुद्धि सतोगुणी होने से जीव के सारे शोक कट जाते हैं। यह विवेक ख्याति से ही प्राप्त होती है। इसके बाद ऋतम्भरा ही शेष रह जाती है।

सृष्टि प्रलय का जैसा नियम है। कार्य का कारण में समाहित हो जाना। ठीक यही दशा योग का भी होता है। वच्चे के लिए सर्प, विच्छू कोई भय कारक नही है। वल्कि खेलने को दौड़ता है। कंकड हीरे सब समान है। भाई वहन लड़ाई कर रहे हैं। पुनः वहीं खेल रहे हैं।

लिंग भेद आदि सभी प्रपंचों से बचे हैं। इसी कारण तो बच्चे हैं। ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते है; प्रपंच पालते जाते। ममता की गठरी सिर पर धर शोक से मोहित हो रहे हैं। पर उसे फेंक नहीं सकते। सारा जीवन जहर बन गया, वचपन की पवित्रता काफूर हो गयी। जीवन जटिल हो गया, अब समेटना बड़ा कठिन हो रहा, पागल बन बैठे हैं। योग इसी को कहते हैं, जहाँ से बिस्तरा बिछाना शुरू किया, वहीं से समेट दो, योग इसी का नाम है। चाहे भव पत्यय या प्रकृति लय हो चाहे विदेहा हो, प्रयत्न प्रत्यय हो या धर्म-मेध हो। इन सब का मूल चित्त है। जो चित्र विचित्र चित्रों से बना है। इसमें सत, रज, तम का गारा लगा है। यही दृष्टा दृश्य सम्बन्ध सारे अनर्थ का कारण है। इसी संस्कार के चित्रों को देख आत्मा शोक, मोह और सुख में विह्वल हो रही है। चाहे वृत्तियों को समाहित करो, चाहे पंच क्लेशों का निवारण करो, चाहे संयम से एकाग्रता लाओ, चाहे कर्म की पहेली सुलझाओं, बात एक ही है। वह है सबका कारण जो चित्त है। उसी में लय करना और दृश्य के लय होने पर गुण अपने आप

ही समाप्त हो जायेंगे। जहां ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय सभी सजीव और सविचार समापत्तियाँ समाहित हो निर्विचार और निर्वीज समापत्ति का उदय तथा पर वैराग्य की प्रतीति होती है। यहाँ केवल एक ही विषय ईश्वर ही रह जाता है। अब शब्द की जरूरत नहीं जहाँ विचारा जायेगा, वहाँ सर्वत्र ईश्वर की व्यवस्था का आभाष होगा। रोये या हँसे, शुभ, अशुभ, जो भी हो रहा है। तृण से पर्वत तथा चींटी से हाथी पर्यन्त सब उसकी व्यवस्था में ही है। अन्य कोई भी नजर नहीं आता सारे विवाद, प्रपंच, झगड़े मिट जाते हैं। तब जीव का अहंकार समाप्त हो जाता है।

जब मैं था तब तू नहीं अब तु है मैं नाहि।
प्रेमगली अति साकरी तामें दो न समाय।।

जीव कृतार्थ हो अपने को उस सामर्थ्यवान प्रभु के सामने समर्पित कर कृतार्थ हो जाता है। यही जीवन की गति तथा धन्यता है। जिसके लिए इतने दिनों से अनेक योनियों में चक्कर लगाता रहा पर शान्ति नहीं मिली और नर तन में आ वेद की शरण में तथा सत् पुरूषों, ऋषियों मुनियों तथा दर्शन आदि के अध्ययन से केवल मनुष्य को ही यह मोक्ष प्राप्त होना सम्भव है।

※※※

४२. उपाय प्रत्यय एवं कैवल्य

उपाय प्रत्यक के सोपान-श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा होती है। साधक में जब तीव्र बैराग्य होने से उसके पूर्व संस्कार जगते हैं तो वह साधना की तरफ अग्रसर होता है। उस समय वह इतना अन्तरमुखी होता है, कि बाह्य जगत उसे शत्रु सा नजर आने लगता है। प्रिय भी अप्रिय हो जाता है। उसकी आध्यात्म में अटूट श्रद्धा हो जाती है।

उसके आहार हल्के सात्विक, दुग्धाहार, फल, कन्द, जूस आदि हो, जो कि शरीर को हल्का रख सके। अगर वायु विकार या गैस है तो पेट की सफाई तथा अपामार्ग की दो-चार पत्तियां नित्य खाया करे या प्रातः हरितिका लेकर पानी अच्छी प्रकार ले। शौचादि से निवृत्त हो ध्यान या चिन्तन में लगे। यो तो उसे इतना अन्तर्मुखी होना चाहिए कि वह चलते फिरते, सोते जागते जाप या प्रभु चिन्तन में रत रहे।

अनुभूतियां- पंचकोष सम्प्रज्ञात आदि की अनुभूति साथ ही साथ होती चलती है। ध्यान कहीं भी लगायें नाभि, हृदय, कण्ठ, जिह्वा त्रिपुटी, सहस्रार या रीड़ जब अन्तर विद्युत जगेगी, तब आकर्षण मूलाधार से ही उठेगा। सबसे स्थूल तत्व पृथ्वी तत्व है। जो तमो गुण मलों से घिरा हुआ है। इसमें गति होना प्रारम्भ होगी। इसके लक्षण पृथ्वी गंधवती होती है। अतः साधक को अनेक प्रकार की गंधों का अनुभव होने लगेगा। इस प्रकार उसका मूलआधार पृथ्वी तत्व तथा ज्ञानेन्द्रियाँ नाशिका का शोधन होगा। कुछ दिन तक यहीं रूका रहने के बाद पुनः यह समाप्त हो जायेगा। और ऊर्जा आगे बढेगी पुनः उपस्थान चक्र पर रूकेगी। यहां पर अनेक प्रकार के रसों का ज्ञान होगा क्योंकि जल का गुण रस ही है। अनेक प्रकार के सूक्ष्म रसों का अनुभव स्वाद द्वारा हो सकता है। क्योंकि स्थूल

भाग जल का उपस्थ है। पर ज्ञानेन्द्रिय रसना है। कुछ दिन यहां रहने के बाद यह क्रिया साधक के साधन की तीव्रता, आहार व्यवहार की शुद्धता, उत्साह की दृढ़ता पर निर्भर है। आगे नाभी चक्र मणि पूरक पर धक्का लगेगा और यहां आकर ही रूकेगा। इसके भेदन का लक्षण नाशग्र दृष्टि करने पर तेज निकलेगा, अगर त्रिपुटी पर ध्यान करते हैं तो, क्योंकि अग्नि तत्व यहां हैं। इसका सूक्ष्म तत्व रूप है। साथ ही कभी-कभी शरीर में चिता जलना, यज्ञ होना, आग लगना तथा त्रिपुटी से चिंगारी आना अनुभव होगा। कुछ समय यहाँ रहेगा यह महत्वपूर्ण है। यहाँ अपान वायु के मल आदि जलते हैं। जिससे इन्द्रियां संयमित तथा विक्षेप कम होने लगते हैं। इसके बाद इसे भेद कर यह सुषुम्ना हृदय पर आती है। यहां वायु तत्व का शोधन होता है। इसमें दस वायुओं का शोधन होकर हृदय, फेफड़ा वलशाली हो जाते हैं। यही राममूर्ति पहलवान का ट्रक रोकना, सीक्कड़ तोड़ना, हाथी सीने पर चढ़ाना तथा रेल का इन्जन तक रोकने को कहा था। इसी के बल पर विलायत जाने पर सैण्डों घड़ी की सूई एक मुक्के में तीन बार नचाया था। और सैण्डों के ११ मुक्के सहे। कोई परेशानी नहीं और राममूर्ति के एक ही मुक्के में वह खून फेंक कर बेहोश हो गया। घण्टों बाद होश आया यह प्राणायाम शोधन का फल है। ब्रह्मचारी आंख, कण्ठ द्वारा सरिया इसी बल से मोड लेते हैं। इसके बाद आगे बढ़ने पर स्पर्श का ज्ञान भी यहीं होता है। इसके बाद कण्ठ देश आता है। जहाँ जाने पर योगी आकाश तत्व का शोधन करता है। इसका गुण शब्द ओज है तथा सरस्वती चक्र खुलने पर भावपूर्ण भाषा, उपन्यास, कहानी, कविता आदि अनायास ही बनने लगते हैं। यहीं आकर बे पढ़े सन्तों ने अनेक कविताओं की रचना की, अपने ग्रन्थों पर कबीर, दादू, पलटूदास, सुन्दरदास, सूर, तुलसी आदि झूम उठे।

इसके बाद तत्वों का दर्शन समाप्त हो अनुभूतियां आने लगती हैं। जैसे उदान वायु के उदय से शरीर हल्का हो जाता है। योगी कण्टक तथा कीचड़ पर भी चल लेता है। आसन ऊपर उठता सा प्रतीत होता है इसके बाद त्रिपुटी पर प्रकृति आत्मा और परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। यहां आकर विवेक ख्याति द्वारा तथ्यों को समझ लेने के बाद वृत्तियों का लय होने लगता है। इसे धर्म मेघ कह सकते हैं क्योंकि प्रकृति के कारबार ही धर्म है उसकी समाप्ति होने

से प्रकृति के गुणों का मुल्य समाप्त होना स्वाभाविक है। यहीं से ऋतम्भरा प्रज्ञा जो सत्य ज्ञान से भरी होती है, उसका प्रारम्भ सबीज या सविचार समाधि समाप्त होती है। इसी को पंचकोष तथा सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। निर्विचार या निर्वीज, समाधि द्वारा असम्प्रज्ञात का उदय होता है। यहां पर केवल ईश्वर विषय ही रह जाता है। सारे जग का खटपट अहं मिट जाता है, और जीव धन्य हो जाता है।

'अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरी अयोध्या'

क्या गलत है? नहीं सत्य पर हठ योगियों का चक्र कमल अक्षर जो हट प्रदीपिकानुसार है। यह गलत है। ग्रन्थियाँ हैं। इसका निराकरण ऋषि ने एक मृर्दे को खींच उसे तेज चाकू से चीड़ अच्छी प्रकार देखा कुछ मिला नहीं अतः उस पुस्तक को वहीं गंगा में फेंक दिया।

वास्तविकता जो है वह यही है जो योग दर्शन, वेदानुकूल तथा अनुभवगम्य है इसी को कबीर आदि ने उपाय प्रत्यय द्वारा ही आत्मदर्शन किया था, बिना योगदर्शन पढ़े। बीच के संत कवियों का माध्यम यही था और वे अवश्य आत्मदर्शी थे।

कबीर का अष्ट कमलदल चरखा डोले, तुलसी का 'नोय निवृत्ति पात्र विश्वासा' आदि विचारणीय है।

'सोह मस्मिइतिवृत्ति अखण्डा दीपशिखा जीमि प्रबल प्रचंडा' आदि विषय विचारणीय है।

इस प्रकार श्रद्धालु साधक का उत्साह दिन दिन बढ़ना साथ ही अनेक प्रकार के अन्तःकरण जनित परिवर्तन का यथावत स्मरण जो सम्प्रज्ञात या पंच कोष रूप में मल विक्षेप आवरण का होते, प्रज्ञा का विवेक-ख्याति से ऋतम्भरा तक अनुभूति, उपाय पत्यय का स्वरूप है। जो साधक के तीव्र संवेग से ही सुलभ है।

***

४३. विशोका वा ज्योतिष्मती

।। ३६।। योगदर्शन

योगी जब अन्तरमुखी होकर आहार विहार तथा प्राणायाम द्वारा अपने को संयमित करते हुए अपने को सतोगुण की तरफ बढ़ाता चला जाता है। तब एक बिन्दु ऐसा आता है कि अन्तर क्रियाओं का रहस्य मिल जाता है। और वह अमनी बन जाता है। इसके लिए प्राणायाम की कुछ विशेष प्रक्रिया करनी चाहिए। इसमें ध्यान देने लायक व्यवस्था यह है कि सत, रज, तम ये तीन गुण लगभंग एक-एक घण्टे में बदलते रहते हैं। इस प्रकार २४ घण्टे में आठ बार सामान्य व्यक्ति की गति होती है। योगी सत गुण को बढ़ाता तथा तमो गुण को कम करता है। ये दोनों स्थिर स्वभाव के होते हैं। इन्हें रजोगुण ही गति देता है। स्त्री और पुरूष की गतिविधि में अन्तर है। यह नाड़ियों से जाना जाता है। सुषुम्ना सतोगुण प्रधान है। इड़ा स्त्री के लिए रजोगुण तथां पुरूष के लिए तमोगुण है। और पिंगला स्त्री के लिए तमोगुण तथा पुरूष के लिए रजोगुण है। क्योंकि सारे जीवन को गति देने वाला प्राण हीं होता है। अतः आहार के अलावा प्राण द्वारा भी सतोगुण बढ़ा सकते है। क्योंकि इन्द्रियों के मल को जलाने वाला प्राण ही होता है।

ये प्राणायाम तो स्वास्थ्य तथा रोग नाशक हैं। जिसकी धूम मची है। पर अंतरंग प्राणायाम विचारों से प्राण की गति विधियों से जाना जा सकता है। पर यह उतना आसान नही है। बहुत ही सूक्ष्म दर्शी योगी गुणों के वेग को इनसे घटा तथा बढ़ा सकता है। सतोगुण बढ़ा इस स्थिति में आ सकता है कि वह उसके प्रकाश में न केवल मन बल्कि अन्तःकरण का भी दर्शन कर सकता है।

योगी जब तक मन को चेतन जान उससे सामंजस्य करना चाहे तो कभी

नहीं हो सकता, और सारा संसार मन को ही मनाने में लगा है। बात ठीक भी लगती है। क्योंकि मनुष्य मननशील प्राणी है। साथ ही यह संसार मनोमय है। इसी की कल्पना पर टिका है। इसका उपयोग भी सही रूप में वेद कहता है।

'तन में मनः शिव संकल्पमस्तु' पर है तो संहत्यकारी, परिणामी, जड़, अतः सिद्धान्ततः जो वस्तु संयोग से बनती है, वह अपने लिए नही होती। उसका उपयोग कोई चेतन ही कर सकता है। अतः इस जड़ पर सर मारोगे तो जड़ता ही गुणानुसार आवेगी। अतः विवेक द्वारा सतोगुण के प्रकाश में इसकी जड़तां को समझे, और जड़ता को अच्छी प्रकार जान गये, तो यह अवश्य मर जायेगा। और इससे कोई प्रयोजन सधने वाला नहीं।

विवेक ख्याति द्वारा यही प्रश्न आयेगा, आखिर इसको गति देने वाला कौन है? तो यही निर्देश देगा अहंकार का, और अन्तर मुख हो आगे जायेंगे तो हमें इसके मूल में सूत्रधार अहंकार मिलेगा, इसी से १६ विकृति उत्पन्न होती है। ११ इन्द्रियां तथा पंच तन्मात्राएं मन भी इसी का पुत्र है। यहां आने को प्रकाश और तेज चाहिए। उस सतोगुण के प्रकाश मे यही अहंकार का पूर्ण ज्ञान होता है। यह अहंकारी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा, अभिमान, मेरा, तेरा, पुत्र, परिवार, सम्पत्ति सबसे नाता जोड़े खड़ा है। और सत, रज, तम से अनेक वेष में आ समाज को बन्दर का नाच नचा रहा है। इसके आगे परमात्मा भी छोटा पड़ जाता है। सब कुछ के बाद इससे जब योगी पूछता है कि तू है कौन? तब इसका भी सिर झुक जाता है। और अपने को संहत्यकारी स्वीकार करता है। यह सत्य के प्रकाश में दैवीय और आसुरी वृत्तियों का दर्शन हो जाता है। और इसकी निरर्थकता सिद्ध होती है। यह है कुछ नही सब कुछ केवल अपने को मान बैठा है। आगे बढ़ने पर योगी की बुद्धि (महद्‌भूत) का दर्शन होता है। वह अंहकार चित्त मन का पूरा विवरण देने में सक्षम होता है। यही जीव विशोका हो जाता है।

योगी यहीं रूकता है। और समझता है कि यही सब कुछ है। क्यों कि इसके सारे कार्य तर्कपूर्ण होते हैं। जब प्रश्न होता है। क्या तू चेतन है? तब यह भी शर्माता है। जिसे मानव शरीर में चित्त कहते हैं।

इतनी छानबीन के वाद ऋतम्बरा प्रज्ञा योगी का स्वागत करती है। इसके पास यथार्थ ज्ञान का भण्डार है और यही चेतन से मिलाती है। अब योगी के सामने से सब प्रपंच समाप्त हो जाता है। और यहाँ केवल एक ईश्वर विषय ही रह जाता है। इसके पहले से सब सबीज तथा सविचार थे अब विचार तथा बीज दोनों का नाश हो जाता है। कुछ दिन निरन्तर अभ्यास के बाद तब जीव कृतार्थ हो अपने को जीते-जीते मुक्त समझता, यही जीवन मुक्त तथा मोक्ष पद है। ऐसा योगी निश्चय मोक्ष का अधिकारी है। यह विशोका ज्योतिषमती के साथ निरन्तर अभ्यास उत्थान और अभ्यास से ही सम्भव है।

※※※

४४. रोगों के प्रधान कारण एवं यज्ञ

मनुष्य के रोगी होने के चार प्रधान कारण होते है।

१. भोजऩ- जिसके रस से रक्त बनता है अनुकूल और सुपाच्य नही है तो वह आंतों में चिपक कर सड़न करता है, तथा गैस पैदा करता है। और वह जिस स्थान को प्रभावी करता है वह रोगी हो जाता है।

२. शरीर अनेक सेल से बना है। नये सेल वनते तथा पुराने नष्ट होते रहते हैं। अगर वे पसीना, स्नान, सूर्य की किरणों आदि से निकलते नही रहे तो शरीर में विष पैदा कर व्यक्ति को रोगी बना देते हैं।

३. अगर शुद्ध ओषजन नही मिलता और वायु का संचार पूर्ण शरीर में अच्छी प्रकार नही हो पाता तो आदमी रोगी हो जाता है।

४. हर एक आदमी को ऋतु के अनुसार आहार विहार करना चाहिए, साथ ही देर से सोना, देर से सूर्योदय पर जागना, अत्यधिक कार्य करना, उसके अनुसार भोजन न मिलना, मांस मदिरा, धूम्रपान वगैरह भी तथा अत्यधिक विषय वासना भी वीर्य हीन होने से रोग के कारण बनते हैं।

इसके लिए प्राकृतिक चिकित्सा नेती, धोती, नेवली आदि, आसन, व्यायाम, शारीरिक परिश्रम, स्नान, सूर्य की रोशनी, प्रातः टहलना, शुद्ध वायु सेवन, प्राणायाम ऋतुनुसार भोजन उसमें ८० प्रतिशत क्षारीय तथा २० प्रतिशत खटाई होनी चाहिए। सोना उठना भक्षाभक्ष मादक वस्तु तथा धूम्रपान आदि से बचना और ब्रह्मचर्य की रक्षा कर प्राकृतिक नियमों का पालन कर हम दुखों से छुटकारा पा सकते हैं।

मानव शरीर अरबों खरबों सेल से बना है। परमात्मा की रचना विचित्र है। ये सेल १ इंच में १ हजार से ६ हजार तक आ सकते हैं। यह सेल एक

झिल्ली के अन्दर तरल पदार्थ के रूप में होता है। इसके अन्दर भी एक छोटा गोल सा पदार्थ होता है। यही इसका प्राण तथा भोजन आकर्षण करने व हजम करने में सक्षम होता है। इसका भोजन मज्जा से जो स्नेहिल स्निग्ध पदार्थ टपकता है उसे वीर्य कहते हैं। यहीं सेल है जिसे वैज्ञानिक प्रोटोप्लाज्म तथा अन्दर के गोलक को न्यूक्लिअस कहते हैं, यही शरीर की रक्षक फौज रोगाणु को अन्दर आने नही देती। और जरूरत पर इनका निर्माण भी अधिक मात्रा में होने लगता है। अगर शरीर में वीर्य की कमी हुई तो यह सेना विद्रोह कर देती है। वीर्य की कमी से उष्मा बढ़ जाती है। जिससे प्रोटोप्लाज्म सूखने लगते हैं। ऐसी हालत में कोई भी रोगाणु शरीर में आसानी से प्रवेश कर शरीर को क्षत विक्षत कर सकते हैं। इस प्रकार मनुष्य रोगी हो जाता है।

इस रोगी को ठीक करने के लिए एलोपैथ जिसमें रोगाणु मारने की अधिक से अधिक शक्तिशाली दवा है। पर वे रोगाणु को मारने के साथ कोई दवा ऐसी नहीं जो शरीर को भी कुछ न कुछ क्षति नं पहुँचाए।

दूसरी ह्यूमोपैथ है जो "समः सम शमपति" या "विषस्य विषमौधम्" इसका कार्य हमारी रक्षक सेना जिसे प्राण सत्ता कहते हैं। उसे दवा द्वारा उत्तेजित करती है। जिससे इस निर्बल में भी बल आ जावे। इसके लिए निदान से ही सम्भव हो सकता है। कोई निश्चित दवा नही, दवा बदली भी जा सकती है।

तीसरी आयुर्वेद की विधि है जो दवा के रस को जाने और प्रभावी होने में देर तथा धीमे होता है। पर सुरक्षित होती है। इससे कोई हानि नही होती और रोग भी मूल से जा सकता है। इसमें भी निदान बहुत आवश्यक है।

चौथी यज्ञ विधि है। अगर औषधियों का सही जानने वाला बैद्य हो तो यह विद्या बहुत ही कारगर सिद्ध हो क्यों कि यह अति सूक्ष्म हो शरीर में प्रवेश कर उन रोगाणुओं को भेद मारने में काफी सक्षम होती है। साथ ही वातावरण के रोगाणुओं को भी नष्ट करती है। जख्म को भरने का भी कार्य करती है। साथ ही पर्यावरण में रोग की दवा या विरोधी दवा के भी परमाणु हो तो भी कोई हानि नहीं होती। क्योंकि वह दवा आवश्यकता भर ही शरीर शोषण करता तथा

जिसकी आवश्यकता होती उसी को शोषण करता है। और रोग को निर्मूल भी करती है। पर उस पर बहुत शोध की जरूरत है। अभी समाज इसकी उपयोगिता को नहीं समझ पा रहा है। अगर ऋतुकालीन औषधियों का समय से थोड़ा हवन करता रहे तो रोगाणु आक्रमण से पहले ही मर जायेगा और उससे पूरे समाज का कल्याण होगा। इसे यज्ञीय चिकित्सा भी कह सकते है। इसका अर्थ यह नहीं की दवा न की जाय। बल्कि यह दवा की सहयोगी विधि और पर्यावरण को रोगाणुओं से मुक्त करने की भी क्षमता रखती है। पर इसके लिए आयुर्वेज्ञ और औषधियों का ज्ञान होना आवश्यक है।

***

४५. क्या मोक्ष उत्तरायण में मरने मात्र से होता है।

कृष्ण के लाख समझाने पर भी महाभारत का युद्ध हुआ। इतना बड़ा नरसंहार हुआ कि १८ अक्षोहिणी सेंना में से केवल ६ ही बचे। अश्वस्थामा, कृपाचार्य, देववर्मा, कृष्ण और पांच भाई पाण्डव। उस युग के धुरन्धर विद्वान आचार्य महात्मा सब दुर्योधन के हठ और दुराग्रह के आगे नतमस्तक हो गये, इसी से ऋषि ने इसे गोत्र हत्यारा कहा है। और यह दुर्भाग्य का विषय है, कि यह भाई द्रोह आज तक भारत के विनाश का कारण बना है। मुसलमान, ईसाई कहीं से आये नहीं हैं। यदि आये वे, तो युद्ध में मरे तथा काल के गाल में चले गये। यहीं के धर्म परिवर्तित हमारे भाई आज एक दूसरे के जान लेवा बने हैं। इसका बीज महाभारत काल से आ रहा है। आज भी भाई के लिए भाई क्रूर बना है। जहां का आदर्श था- धर्म, न्याय, सत्य का पालन तथा भाई के साथ उत्तम व्यवहार। राम ने लक्ष्मण को शक्ति लगते ही जिस धर्म को पूरी अयोध्या के मनाने पर भी राम नंहीं छोड़ने को तैयार हैं। उसी धर्म को एक क्षण में त्यागने को तैयार हो गये। और बड़े दुख से कहते हैं कि 'जो जनत्यों वन बन्धु विछोहू पिता वचन मनत्यौ नही ओहू।।'

माता पिता, पुत्र पत्नि, तो बार-बार मिल सकते हैं। पर सहोदर भ्राता मिलना बहुत कठिन है।

इसी से वेद गृहस्थाश्रमी से कहता है कि हे! गृहस्थों तुम सब समान हृदय रखो। एक दूसरे को ऐसे चाहो जैसे गाय बछड़े को प्यार करती है।

स हृदयं सामनस्यम विद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्स जात-मिवाध्न्या।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारभुत स्वसा।

सम्यञ्च सव्रताः भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

भाई-भाई के साथ, बहन बहन के साथ, भाई बहन के साथ परस्पर द्वेष न करें। आपस में सदा सुखदायक कल्याणकारी वाणी बोले।

पर हो क्या रहा है? वह सभी के सिर बीत रहा है। सभी अपने भाई और परिवार से दुखी हैं। यह बीज महाभारत से आ रहा है।

एक भाई को नीचा दिखाने के लिए, स्वकुल वधू एक वस्त्रा को सभा में नंगा किया जा रहा है। भीष्म पितामह भी बैठे हैं। सिर नीचा कर लेते हैं। अगर एक बार भी विरोध करते तो कौरवों की हिम्मत नहीं होती। क्योंकि इन्हीं लोगों के भरोसे महाभारत की विजय समझी जाती थी। १३ वर्ष वनवास के घोर संकट सहने के बाद भी राज्य में हिस्सा नहीं दिया जा रहा है। उल्टे पाण्डवों को जलाकर सर्वनाश की तैयारी लाक्षागृह की हो रही है। भीम को जहर दिया गया। सब अन्याय को देखने पर भी भीष्म पितामह चुप हैं। और लड़ाई में दस हजार सेना को नित्य मारने का संकल्प ले रहे हैं। सब उनकी आंखों के सामने हो रहा है।

भीष्म पितामह घायल हुए हैं बाण शैय्या पर पड़े जिन्दगी के दिन गिन रहे हैं। और पूछते हैं कि उत्तरायण सूर्य कब हो रहा है?

लोगों ने उत्तर दिया १८ दिन में। इतने दिन यातना सहते प्राण रोके थे। मोक्ष के लिए।

आप सभी सज्जनों से मेरा प्रश्न है कि- जिस कर्म के सिद्धान्त पर परमात्मा ने यह सृष्टि बनायी। तथा उनके कर्म भोगों की व्यवस्था की। उसी के अनुसार प्रेय और श्रेय का विकल्प निकला। क्या यह नियम भीष्म पितामह के लिए नहीं है? केवल मुक्ति के लिए काल का ही बन्धन है। और आगे बढ़ कर देखो तो ये मुक्ति क्षेत्र काशी, मथुरा, प्रयाग उज्जैन आदि के लिए कर्म का कोई मुल्य ही नही है। अगर ऐसा है तो उत्तरायण में मरने वाले कीट पतंग, मनुष्य आदि करोड़ों-करोड़ों प्रतिक्षण हैं। वे सभी मुक्त हो जायेगें। और प्रेय में मरने वाले भी इन मुक्ति क्षेत्रों में है। क्या नरक जायेंगे? यह एक विकट प्रश्न है, जो

केवल हिन्दू ही इस भ्रम में नहीं है। मुसलमान और ईसाई भी कर्म पर विचार न कर, केवल मुहम्मद और ईशा पर अमल लाओ, कर्म पर कोई विचार करने की जरूरत नही। इसका परिणाम ही अन्याय, आतंक, अत्याचार, अनैतिकता, दुराचार पनप रहे हैं।

अतः इन भ्रान्तियों को छोड़ कर मानव मात्र को अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मों पर अवश्य विचार करना पड़ेगा। यह आत्म मंथन बगैर किये जीवन के शास्वत सत्य का दर्शन नही हो सकता है। धर्म तथा परमात्मा भी मिथ्या ही सिद्ध होगा। चाहे राम हो या कृष्ण हो, मुहम्मद हो, या ईशा हो, शंकराचार्य हो या भीष्मपितामह हो या दयानन्द हो इस कर्म के शास्वत नियम को कोई झुठला नही सकता है।

राम पर जब आपत्ति के पहाड़ आने लगे तो तुलसी ने कर्म फल का सहारा लिया कहते हैं-

करम गति टारे नाहि टरी।
मुनिवशिष्ठ से पंडित ज्ञानी शोचि के लगन धरी।।

फिर भी- सीता हरण मरण दशरथ को वन में विपत्ति पड़ी।
नीच हाथ हरिश्यचन्द्र विकाने वलि पातालधरी।
कोटि गाय नित पुन्य करत ते गिरगट योनि पूरी।
सिय को हरि ले गयो रावना सुवरन लंक जरी।
करम गति टारे नाही टरी।

ऐसे ही सब के साथ हुआ है। इस पर विचार करें। अतः जैसे दयानन्द ने वेदोद्धार किया, अंछूतोद्धार किया, नारी उद्धार किया, नारी शिक्षा, मूर्तिपूजा, पितृ श्राद्ध, गोवध-खण्डन राष्ट्रोद्धार किया है। वही इस काल मरण तथा मुक्ति की सच्ची व्यवस्था योग दर्शन से दे गये। इसके लिए देश काल तथा स्थान का कोई महत्व नहीं है। यह केवल कर्म सिद्धान्त पर ही सम्भव है। महर्षि ने मरते समय पूछा कि कौन दिन है? मंगलवार, कौन तिथि है? कार्तिक अमावस्या, घोर

कृष्ण मार्ग, दक्षिणायन सूर्य है। ऐसे समय में हजामत बनवा, स्नान कर, कुछ वेद मंत्रों को पढ़ते, सारी खिड़कियां खोल दो, और एक तरफ हो जाओ। मुस्कराते हुए "परमात्मा जो किया, अच्छा किया मेरे वच्चों को सम्भालना"। सभी भ्रम मिटाने के साथ मरते-मरते यह काल भ्रम भी मिटाते गये। ऐसी वेदना में इस प्रकार ज्ञानपूर्ण मृत्यु देख, गुरूदत्त नास्तिक था। आस्तिक हो गया। अपने कुर्ते पर आर्य समाज के दस नियम लिख दिन रात प्रचार में दीवाना हो गया। ऋषि के जीवन तथा एक-एक कर्म भ्रम निवारक हैं। वे इन्हीं भ्रमों रूढ़ियों मान्यताओं को मिटाने तथा, वेदोनुमोदित, सहज, सरल, सुखद तथा चारों पुरूषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को, इस संसार में वर्णाश्रम व्यवस्था का यथावत पालन करते बड़ी सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। लोग कहते है धर्म पर चलना, सत्य बोलना, न्याय पर रहना इस युग में बहुत कठिन है। पर मै कहता हूँ, यदि वेद के सिद्धान्त को हम समझ जावे तो अधर्म पाप असत्य अन्याय ही जिसको आज का समाज प्रश्रय दे, तथा इसके बगैर जीवन सफल नहीं समझ रहा है। यही सारे दुःख कष्ट और पाप का कारण है। वल्कि इसकी अपेक्षा धर्म, सत्य, न्याय बहुत हीं सरल और सर्व सुलभ हैं। महर्षि कहते हैं। कौन ऐसा है जिसकी आत्मा सत्य और न्याय को नहीं जानती? पर मोह और स्वार्थवश आत्मा के विपरीत कर्म करता। अतः मनुष्य स्वयं अपना शत्रु एवं स्वयं अपना मित्र है।

रविन्द्र नाथ टैगोर की कविता बंगला में है। उसका भाव यह है- कवि बन्दी से पूछता है- बन्दी तुझे किसने कैद किया है? किसने ये जेल की दीवारें खड़ी की है? किसने जंजीर बनाई है? किसने इन जंजीरो से तुझे जकड़ा है? बन्दी सिर झुका लेता है, सोचता है और कहता है। मैने स्वयं अपने आप को कैद किया है। मैंने स्वयं दीवारें तैयार की है। स्वयं जंजीरें बनाई है और स्वयं को जकड़ा है। पर अब स्वयं विवश हूँ। इसी प्रकार अगर विचार न किया जाय तो अपने ही कर्म पर स्वयं रोना होगा। परमात्मा भी नहीं बचा सकता है, पर न्याय द्वारा दण्ड अवश्य देगा। कितनी ही प्रार्थना करो उसमें रंच मात्र भी न्यूनाधिक नही हो सकता। यही तो परमात्मा की दया है। आज सारा समाज इस

कर्म के भ्रम में ही दुःख उठा रहा है। इसी भ्रम का अन्तर-मन्थन ही आध्यात्म है। जिससे परमात्मा में श्रद्धा होती है तथा वही श्रद्धा जीवन मे परिवर्तन तथा मोक्ष तक पहुँचाती है।

श्रद्धयाग्ने हविष्मते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धा भगस्य मूर्धानि श्रद्धा वचसा वेदयासि।।
ऋ० १०/१५१/१

श्रद्धा से ही अग्नि प्रज्वलित होती है। श्रद्धा से आहुति भेंट होती है। श्रद्धा से ही शीर्षस्त, ऐश्वर्य मिलता, वेदवाणी यहीं जतलाती है।

यथा देवा असुरेषु, श्रद्धामुग्रेषु च क्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि।

अर्थात्- योगी, विद्वान आध्यात्मज्ञानी, श्रद्धालु पुरूष अपने मन वचन कर्म से (जो केवल प्राणों की पुष्टि में लगे रहते हैं या आजीविका के साधनों में ही संलग्न रहते हैं) ऐसे नर नारियों में भी आध्यात्म का बीज आरोपण करते हैं। वहीं आत्मिक बल से उग्र, क्रोधी स्वभाव वालों में भी आध्यात्म श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। हे ईश्वर! हमारे अन्दर भी ऐसी पालन करने योग्य श्रद्धा को पैदा करो कि हमारे अन्दर जो श्रद्धा भाव छिपा है उसका उद्भव विकास हो।

इस प्रकार कर्मफल ही वैदिक नियमानुसार सारी सृष्टि की भिन्नता का मूल है। इसमें किसी प्रकार की कटौती क्षमा आदि सम्भव नही। बीते पर कोई अधिकार या सुधार नही। केवल भविष्य ही सुधार कर हम अपने कष्टों का निवारण तथा जीवन उत्थान कर सकते हैं। इसमें देश काल तथा स्थान को कोई महत्व नहीं है।

***

४६. पुर्नजन्म एवं कर्म

कर्म सामान्यतया तीन प्रकार के होते है।

१. क्रियमाण २. संचित ३. प्रारब्ध

ये जन्म जन्मान्तर के कर्मों से संस्कार रूप से जाति, आयु और भोग के रूप में जीव को जन्म के साथ ही प्रारब्ध रूप में मिलता है।

इन्हीं संस्कारों के आधार पर रूप, गंध, रस, स्पर्श और वाक। ये ५ प्रकार के भोगों का खजाना कर्मानुसार प्रारब्ध के साथ आते हैं। इसके सारे संस्कार चित्त पर चित्रित हैं। इन्हीं की अन्तर प्रेरणा इच्छा के रूप में बार-बार जोर मारेगी। जिसे वृत्ति भी कह सकते हैं। यह आत्मा की अनुमति से बुद्धि द्वारा अहंकार के पास आने पर वहीं से मन और ज्ञान-इन्द्रियों का व्यवहार होता है। फिर मन द्वारा कर्मेन्द्रियों तक आयेगा। यह पाँच रूप में होता है।

१. प्रसुप्त २. तनु ३. विच्छिन ४. उदार ५. दग्ध बीज

चित्त में पूरे जीवन के आयु भोग के संस्कार हैं। समय-समय पर आते रहेगें। कुछ आयेगें बाकी प्रसुप्त रहते हैं। जैसे बचपन में काम प्रसुप्त रहता है। पर भोजन आदि उदार भाव से बराबर आते रहते हैं। युवावस्था में प्रसुप्त काम भी जागृत हो जाता है। या वैसे तो प्रसुप्त रहते हैं। पर जब उनका कारण उपस्थित होता है तो उत्पन्न हो जाते हैं। क्रोध, लोभ, दया, करूणा और उदारता इत्यादि।

कुछ तनु संस्कार होते हैं। पर धुंधले होते हैं, जो समय आने पर उभर आते हैं। तीसरे-तथा एक के बाद दूसरे विच्छिन होते हैं। जो उभार पर तो होते हैं पर प्रतिपक्ष से दब जाते है। जैसे रोग से द्वेष, शत्रु से मित्र, भय से

काम आदि।

चौथे उदार होते हैं। जो पूर्ण रूप से तात्कालिक योग का कारण होते हैं। यह क्रमशः आते रहते हैं। तथा इन्हीं भोगों को विचार पूर्वक करने से मनुष्य जीवन का उत्थान पतन होता है। पांचवाँ दग्धवीज कुछ ऐसे दुष्कर्म होते हैं, जो संसर्ग से आते जाते हैं। पर ज्ञान, विवेक, ख्याति, सतसंग, उपदेश से दग्ध बीज भी किये जा सकते हैं। इस क्रियमाण से ही संचित और अगला प्रारब्ध बनता है तथा अगले योनि का भी निर्माण होता है।

क्रियमाण में यम और नियम का बहुत महत्व है। यम से उत्तम योनि की प्राप्ति होती है। जब हम कोई भी कर्म अहिंसा पूर्वक करते हैं किसी प्रकार से शारीरिक मानसिक और वाचिक हिंसा (दुख) नही देते हुए जीविकोपार्जन करते है तो पूर्ण सत्य का पालन करते हैं। किसी प्रकार की चोरी, मिलावट, कम तौलना आदि नहीं करते हैं और उतना ही परिग्रह करें जिससे सुचारू रूप से कार्य चल सके। तथा ब्रह्मचर्य पूर्वक दृढ़ता और निष्ठा से समाजोपकारार्थ सेवा भाव से कर्म करते, ईश्वरार्पण करते धर्माचरण करें, तो क्रियमाण ही श्रेष्ठ कर्म बन जाता है। इससे उत्तम मनुष्य कुल में जन्म मिलता है।

'नियम से जीवन में उत्तमता आती है।'

जीविकोपार्जन या भोग शुद्धता से करें। किसी प्रकार की मिलावट न करें, छल कपट, झूठ आदि का सहारा न लें, वस्तु की गुणवत्ता कायम रखकर कार्य करें। साथ ही सन्तोषपूर्वक पूर्ण पुरूषार्थ करते हुए लाभ हानि को सहते हुए धर्मानुसार उपकार भावना से तपपूर्वक कठिन परिश्रम करें, स्वाध्याय भला बुरा पाप पुण्य, कम-वेस, उपयोगी अनुपयोगी का आत्म चिन्तन पूर्वक (ईश्वरार्पण) भाव से, निष्कामता पूर्वक कार्य करते हैं तो ऐसे कर्म से आत्म उन्नति, उत्तम आजीविका एवं उत्तम कुल में जन्म मिलता है।

तीसरा- उलूक या तुम शुस्लूकया तुम ....

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, हिंसा और क्रूर आदि भाव या

कर्म से हम जीविका कमाते हैं, तो यही हमें मानवेत्तर योनि पशुपक्षी, हिंसक योनियों में जैसे कंगला, कोढ़ी, विकलांग, पागल आदि जन्म के कारण बनते हैं।

अतः हमको जीवन में योग विद्या की इसी से जरूरत है। गीता में इसी को 'योगः कर्मसु कौशलं' भी कहा है। तथा आष्टांगिक योग द्वारा हम बुद्धि का विकास कर विवेक ख्याति द्वारा अपने कार्यों को सुधारें, न केवल मानव जन्म बल्कि जन्मजन्मातर को सुधार कर मुक्त भी हो सकते हैं। अतः मनुष्य को अपने कर्मों के प्रति बहुत सावधान रहना चाहिए। इसी को योग दर्शन में, शुक्ल, कृष्ण मिश्रित तथा अशुक्ल अकृष्ण नाम दिया गया और गीता में सुकर्म से आप्त कर्म की व्याख्या है। अतः -

'अवश्यमेव भुगतब्यं कृते कर्म शुभाशुभमं'।।
गोस्वामी भी, कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा।।
।। कर्मणेवा धिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।।

सब का उद्देश्य कृत कर्मों पर सावधानी है। हम कहां से आये? क्या करने आये? क्या कर रहे हैं? और इसका परिणाम क्या होगा? इसका ध्यान आवश्यक है।

मनुष्य अपने कर्मों का पुतला है। निश्चय ही मानव योनि श्रेष्ठ है। अतः इसके लिए श्रेष्ठ कर्म जिसे यज्ञ कहते हैं। (यज्ञवैश्रेष्ठतमम् कर्म) जीवन ही अगर यज्ञमय परोपकारार्थ बना लें तो सुखी मानव जीवन अवश्य मिलता है। मनुष्य जिस क्रम से उपकार करता है। उसी हिसाब से मानव जीवन में सुख मिलता है।

पंच महायज्ञ से भी परिवार की गुणवत्ता बढ़ जाती है और पुनः मानव योनि की सम्भावना बढ़ जाती है।

परमात्मा की भक्ति का फल मुक्ति। अगर मुक्त नही हुआ तो (अनेक जन्म सिद्धि) बार-बार मनुष्य योनि दे परमात्मा मुक्ति तक पहुंचा देता है। यह

उसकी कृपा है जो योगारूढ़ भक्त पर होती है।

अतः मनुष्य जन्म के परमात्मा की व्यवस्था में अनेक कारण बन सकते, यह चिन्तन तथा परमात्मा के ज्ञान का विषय है। हमें अपने कर्मों का ध्यान देना चाहिए जो हमारे अधीन है। न्याय परमात्मा की व्यवस्था है।

***

४७. आदर्श ही आराध्य है

मनुष्य उभय कर्मयोनि है। यह स्वाभाविक कर्म को भोगता तथा नैमित्तिक कर्म से अपना विकास मोक्ष और बन्धन का कारण बनाता है। अतः मनुष्य को उन आदर्शों के प्रति अवश्य जागरूक रहना चाहिए जिससे जीवन का उत्थान हो। इसके लिए उसे जीवन लक्ष्य तथा जीवन दर्शन अवश्य निश्चित करना चाहिए। वह समाज से ही मिलता है।

समाज में चार प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं।

प्रथम– जो शरीर और सामान्य वाणी, बुद्धि से परिश्रम कर अपनी आजीविका कमाने का कार्य करते हैं, वह पामर कोटि के होते हैं। वह मानव व पशु योनि के मध्यम में आते हैं। इनमें मानवेत्तर योनि की सम्भावना अधिक होती है इनका जीवन-जीविका-प्रधान ही होता है। अधिकतर दुर्व्यसनी, व्यभिचारी, इन्द्रिय लोलुप और अपराधी यही होते हैं। ये तमोगुण प्रधान तथा रजोगुण नाम मात्र या गौड़ होता है।

द्वितीय – ये वाणी प्रधान हैं। शारीरिक गौड़ कार्य करने वाले हैं। इनमें रजोगुण प्रधान सतोगुण गौड़ होते हैं। ये समाज को यथार्थ और आदर्श दो रूप में विकसित करने की परिकल्पना लिए होते हैं। इनमें उपदेशक, अध्यापक, प्रोफेसर, वकील, आधुनिक वैज्ञानिक, पुरोहित, उपदेष्टा और उपाध्याय आदि आते हैं।

तृतीय–वर्ग वह होता है जो अपने प्रारब्धवश, धनी कुल में पैदा है या विद्वान कुल में पैदा हो, बिन परिश्रम ही धन पा जाता है या ज्ञान भी मिल जाता है। यह संकल्प विकल्पात्मक होता है। इसके जीवन में दृढ़ता नही होती। साथ ही यह ख्याली-दुनिया (दीवास्वप्न) में अधिक रहता तथा बालू की भीत खड़ा करता

रहता है। वह आलसी, प्रमादी और अहंकारी होता है। न वह स्वयं का हित कर पाता है और न समाज के योग्य होता है। रूढ़ियों और पाखण्ड बढ़ाने में तथा मनमाने तर्क विर्तक मान्यताओं को जन्म देता है और पालता है।

चौथा- इसमें ऋषिमुनि, महात्मा, संत, सन्यासी और राजा आदि आते हैं जो गीता के अनुसार-

'शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभि जायते'

ये समाज के महत्वपूर्ण अंग है। जिनके आदर्श पर ही समाज उन्नत तथा इनके नैमित्तिक गुणों को लेकर ही आदर्श जीवन बना सकता है।

अतः समाज या राष्ट्र के उत्थान पतन स्तर का निर्णय इन्हीं की बहुलता तथा अल्पता से हो सकता है। वही देश ऐश्वर्यवान हो सकता है। जिसमें ऐसे पुरूष की बहुलता हो।

वैदिक परम्परा में प्रातः कालीन मंत्रों में ऐसे ही भगपूर्ण भगवन्त की प्रार्थना परमात्मा से की गयी है। पर केवल प्रार्थना से तो बनने वाला नहीं है। इसके लिए उन आदर्शों की आराधना करनी होगी, जिन्होंने इसे अपने जीवन में धारण किया है।

अब इनकी परम्परा पर विचार करें तो यह संसार तीन प्रकार की श्रेणी दुख-सुख तथा अपराधों से भरा है। इनका उद्धार तथा न्याय परमात्मा, राजा तथा संत पुरूषों द्वारा ही संभव हे।

१. राजा अपराधी को दण्ड दे सकता है। समष्टी के कल्याण को ध्यान में रख कर अगर एक के अपराध से अनेक की क्षति है तो वह प्राण दण्ड भी दे सकता है। पर राजा अल्पज्ञ होने के कारण दोषी तो नहीं पर न्यूनाधिक न्याय कर सकता है। जिसे परमात्मा अपने ज्ञान से पूरा करता है। इतने पर भी अगर उचित है तो परमात्मा दण्ड नहीं देता। किसी जन्म के पुण्य आत्मा या योग भ्रष्ट योगी को ही राज्य कार्य मिलता है। अतः उसे न्याय और सत्य से ही अपनी रक्षा तथा मर्यादा रखे हैं। इसमें उसे प्रमाद सिफारिस का सहारा नहीं लेना चाहिए।

२. परमात्मा न्याय करता यह सुख दुख कर्मानुसार ही करता है। जिससे जाति, आयु और भोग मिलती है और सच्चा न्यायाधीश वही है। यही उपकार मनुष्य पर उसकी दया भी है। अन्यथा क्या से क्या हो जाता?

३. कल्याणकारी वह पुरूष है जिसने अपने जीवन में केवल भगों की प्रार्थना ही नहीं किया बल्कि उसे आत्मचिन्तन मन्थन और पुरूषार्थ से भगों को जीवन में उतारा है। और भगवान कहलाने का अधिकारी है। यह भग ६ हैं।

१. धर्म २. वैराग्य ३. ज्ञान ४. यश ५. लक्ष्मी ६. श्री मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीरामचन्द्र, योगीराज श्री कृष्णचन्द्र इन भगों को जीवन में परम पुरूषार्थ से प्राप्त किया था। इसी कारण भगवान कहलाये। पर यह ऐसे नहीं संभव है। इसकी रक्षा तथा प्राप्ति के लिए सात मर्यादायें तथा दस धर्म के नियमों का पालन करना भी आवश्यक है।

मर्यादायें- स्तेयं तल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापानं दुष्कृतां।
कर्मणः पुनः पुनः सवां पातकेयऽनृतो ध्यमिति।।

१. स्तेय २. परस्त्रीगमन ३. वेद विद विद्वान की हत्या ४. भ्रूण हत्या ५. सुरापान ६. दुष्कर्म का बार-बार सेवन करना ७. झूठ बोलना

इनको राम और कृष्ण ने पूर्ण रूप से त्यागा तथा साथ ही धर्म के दस मर्यादाओं को भी अपने जीवन में लक्षित किया वह है -

'धृति क्षमा दमो स्तेय शौच इन्द्रिय निग्रहं।
धी विद्याऽसत्यं क्रोधो दशकम् धर्म लक्षण।।'

ऐसे व्यक्ति जिन्होंने अपने जीवन में सात मर्यादाओं और दस धर्म के लक्षणों को लक्षित कर लिए हैं। वही भग (ऐश्वर्य) ऐश्वर्यवान या भगवान श्रीमान् हो सकते हैं।

ऐसे पुरूषों के आचार तथा क्षमादान से ही कितने सुधर जाते हैं। इनका दण्ड क्षमादान ही है। जैसे बुद्ध तथा महर्षि दयानन्द जी के जीवन में मिलता है।

अंगुलीमाल ने महात्मा बुद्ध को देख बोला, रूक जा वो रूक गये। पर जब निर्भय हो वो दृढ़ता से बोले। 'मैं तो रूक गया पर तू कब रूकेगा।' उसे सोचना पड़ा और इसका तात्पर्य पूछा तो बुद्ध ने बताया, मैं तो तेरी देवी की पूजा करने के लिए आया। पर तू इस पाप कर्म को कब तक करेगा? कितने को कर्महीन बना दिया, रोटियां कमाना दूभर कर दिया तेरा यह पापं कर्म कब रूकेगा। अपने पापं का ध्यान करते ही बुद्ध के पैरों में गिर पड़ा और महात्मा बन गया।

दयानन्द ने अमीचन्द्र से इतना ही तो कहा 'तू हीरा है', कीचड़ में पड़ा है। इतने ही शब्द ने उसको जगा दिया और अमीचन्द्र, अमीचन्द बन गया। तहसीलदार ने विष देने वाले को दण्ड के लिए लाया जिसे क्षमा कर 'मैं बन्धन के लिए नहीं मुक्त कराने आया हूं।' उसके जीवन में सुधार लाया। विष देने वाले जगन्नाथ को भी रूपये की थैली दी। आदि महर्षि के न्यारे क्षमा दण्ड विधान है। यह क्षमा दान समाज का उन्नैयन, मर्यादा, आदर्श, परम्परा, सुधारादि इन्हीं पर है। जो देश जितना ही ऐसे महापुरूषों का आदर, सम्मान, व्यवस्था देंगा वह अवश्य हीं सुख शान्ति प्राप्त करेगा। आज इसी का अभाव है। प्राचीन भारत का गुण गौरव इन्हीं लोगों से था।

अतः विचार पूर्वक आचरणीय है। यह चौथे प्रकार का वर्ग है। जिनके आदर्शों की आराधना से आत्म उन्नति और समाज कल्याण सम्भव है। इसलिए हमारे अपने जीवन का लक्ष्य और दर्शन भी आवश्यक है जो श्रद्धापूर्वक, विवेकयुक्त शिवसंकल्प बनें।

श्री राम ने राक्षस रावण का नाश किया पंर सोने की लंका के लिए नहीं। लंका विभीषण को प्रदान की। श्री कृष्ण ने यथाशक्ति युद्ध का प्रतिकार किया पर दुर्योधन के हठ और अन्याय का फल और उसके समर्थक के गर्व को धूल में मिलाया राज्य के लोभ से नहीं। इसी से गीता में आया है-

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

यही आदर्श आज उनकी आराधना का कारण है।

⁕⁕⁕

४८. जीवन में यम नियम का महत्व

यह सारा विश्व ध्यानपूर्वक देखने से प्रपंच प्रतीत होता है जो कि अष्ट प्रकृति और उसकी १६विकृतियों से बना है। और उसी से ये शरीर का पिण्ड भी बना है। इसी कारण भोग्य भोक्ता का सम्बन्ध है। परमात्मा ने नियत विपाक हर एक के लिए उसके कर्मानुसार बनाये हैं। उसमें कोई कमी नहीं की है और न कुछ लेकर आये न जाते समय ही कोई सामान लेकर जाना है। केवल अपनी नियति और कर्म ही लेकर जाना है। और प्रारब्ध ही लेकर आये हैं। पर इस थोड़ी सी जिन्दगी के लिए कितना इकट्ठा कर लें समझ नहीं आता है। दरिद्रता इतने उदार दाता के देने से भी नहीं जाती। अतः इन संसाधनों को जुटाने में होड़ लगी हुई है। वही उन्नति का स्वरूप बन चुका है। इसके लिए अपेक्षा आवश्यक है। सारे विश्व में लूट मची है। प्रकृति का दोहन हो रहा है। जंगल काटे जा रहे हैं। खानों से धातुएँ निकाली जा रही हैं। पृथ्वी की उर्वरक शक्ति क्षीण होती जा रही है। अन्तरिक्ष तक होड़ लगी है तथा दूषित हो रहा है। ग्रह उपग्रह पर भी अधिकार की मानव सोच रहा है।

ऐसा क्यों? इसके कारण अनेकों के अधिकारों की हिंसा हो रही है। तथा विकास के नाम पर विनाश के आसार नजर आ रहे हैं। इन्हीं समस्याओं का सामाधान योग करता है और आज के परिवेश में उसकी परम आवश्यकता है। इसका कारण योगदर्शन, केवल अविद्या (अज्ञान) ही बताता है। इसके सामाधान के लिए ही आष्टांगिक योग है। और यम नियम को महाव्रत कहा गया है। यम का पालन हो तो बाह्य शान्ति व्यवस्था स्थापित हो सकती है। और उससे आन्तरिक विकास तथा आदर्श, मर्यादा, न्याय और सत्य की स्थापना से एक स्वस्थ्य सुखी समाज बन सकता है।

इस संसार को भोगने में १४ साधन क्रियाशील होते हैं। १० इन्द्रियां जिन्हें वाह्य करण कहते हैं। और ४ अन्तःकरण कहलाते हैं। इनके द्वारा ही सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। पर ये सब जड़ हैं। संहत्यकारी (कई के योग से बने हैं) जो संहत्यकारी होता है वह अपने लिए नहीं बल्कि दूसरे के लिए होता है। अतः आत्मा के अनुमोदन से ही कार्य होता है। पर प्रयोजन शरीर का है आत्मा का कोई नहीं, लेकिन अविद्या के कारण शरीर को ही आत्मा मान बैठे यही दृष्टा दृश्य सम्बन्ध बन्धन का कारण है।

अन्तःकरण में जब दोष आ जाता है तो सारे कार्य अविद्या जनित हो जाते हैं, चित्त का दोष काम है चित्त काम से विषाक्त हो अपनी स्मृति वृत्ति द्वारा बीते चित्रों का चित्रण कर मनुष्य को पतन के तरफ ले जाता है। क्रोध वाणी का दोष है। इससे वाणी अपवित्र होती है। लोभ बुद्धि को अपवित्र करता है। मोह मन का विकार है। और अहंकार कान का दोष है। ये सब अन्तःकरण अविद्या से ग्रसित हो पशु बना देते हैं। इसी से वेद कहता है-

'उलूक या तुम सुलूक यातूम........'

योग दर्शन इसका निदान यम और नियमों से किया है। इन्द्रिय जनित बाहय दोष को यम द्वारा तथा अन्तःकरण के दोष को नियम द्वारा दूर कर सकते हैं।

उदाहरण- यम का प्रथम नियम अहिंसा है। विर्तक हिंसा शरीर से या स्वयं कृति हो या परकृत हो या अनुमोदित, हर हालत में पाप ही है। इसका कारण लोभ है। लोभ से क्रोध या मोह के कारण वाले होते हैं। ये मृद मध्य और अधिमात्र वाले भी होते हैं। इनका फल अत्यधिक दुख और अज्ञान वाले होते हैं। अतः वितर्क आने पर प्रतिपक्ष का विचार कर, अहिंसा का व्रत सदा सर्वदा धारण करना सभी प्राणियों के साथ वैर भाव को छोड़ प्रीति से बर्तना अहिंसा है।

देश, काल, जाति और समय कहीं भी शारीरिक, मानसिक और वाणी द्वारा हिंसा नहीं करना चाहिए। प्रतिपक्ष भावना से विर्तक धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। और व्यक्ति **'अहिंसा, प्रतिष्ठायां , बैर, त्याग'** का सिद्धान्त सिद्ध

होता है। उसका शत्रु कोई नहीं रह जाता।

इसी प्रकार यम और नियमों पर क्रम से शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक दोषों के कारण जब भी वितर्क (विपरीत विचार) उत्पन्न हो, उसका कारण लोभ, क्रोध और मोह ही हो सकता है। चाहे स्वयं कृत हो या पर कृत या अनुमोदित। किसी देश काल समय जाति में हो अविद्या जनित और दुखकारी ही होते है।

यह दुख भी चार प्रकार से होता है। परिणाम दुख- जीव को निर्वल करना फिर मारना। उसे दुख देना, परिणाम दुख, ताप, दुख, संस्कार दुख, गुण वृत्ति दुख होते हैं।

उदाहरण बतौर यम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रस्मचर्य का पालन अगर प्रत्येक व्यक्ति जीवन में अपनाये तो अवश्य सुख शान्ति बढ़ेगी। इसका वितर्क (हिंसा, असत्य, स्तेय, परिग्रह और ब्रस्मचर्य का पालन न करना व्यभिचार) करने से अवश्य अशान्ति और चार प्रकार के दुख बढ़ेगें।

१. प्ररिणाम दुख- कारण-लोभ या क्रोध या मोह जो अन्याय और अशान्ति के कारण बनेगा।

२. ताप दुख - जिन लोगों को इन व्यवहारों से दुख पहुंचेगा तथा अपनी परेशानी भी ताप दुख है।

३. संस्कार दुख - ऐसा ही बार-बार करने से संस्कार पड़ जाने पर फिर उससे छूटना बहुत कठिन हो जाता है। जिससे सम्मान चला जाता है।

४. गुण वृत्ति दोष - इससे सुख दुख, मोह विरोध द्वारा और अराजकता और अवसरवादिता को जन्म मिलता है। मर्यादा की हानि होने से समाज में दुख और अज्ञान बढ़ता है।

इसी प्रकार नियम, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान के विपरीत आचरण से मानव, दानव बंन जाता है। और ये परिणाम, ताप, संस्कार और गुण जनित दुखों से और अविद्या से घिर, परम दुख और अशान्ति

का कारण बनता है। वह न अपना कल्याण कर पाता न समाज का। उसे असुर, दानव, पिचाश, राक्षस जो भी कहा जाय कम ही है।

अतः मनुष्य यम और नियम को जीवन में अच्छी प्रकार पालन कर जीवन सफल बनाये इसी से मनु कहते हैं-

यमान सेवते सततं नियमान केवलान बुद्यैः।
यमात् पतत्य कुर्वाणो नियमान केवलान भजैः।।

मनु ४/२०४

तदर्थ यमनियमा भ्यामात्म संस्कारों योगाच्चाध्यात्म विध्युपाथेः।

न्या० ४/२/४६

इस अपवर्ग की सिद्धि के लिए यम नियमों के द्वारा आत्म संस्कार अर्थात् अधर्म को दूर करना एवं धर्म का आचरण करना चाहिए। योग शास्त्र से आध्यात्म विधि जाननी चाहिए। यम नियम की उपेक्षा साधक तथा समाज दोनों के लिए घातक है। अतः इसका पालन अवश्य करें।

⁂⁂⁂

४६. सोलह कलायें और परमात्मा

" स्वयम्भूव ब्रह्मा ऋषिः। परमेश्वरो देवता"

यस्माज्जातं न पराकि चनैव य आवमुव भूवनानिन विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सैरराणस्त्रिणि ज्योतिषि सचेत सा षोऽशी

पदार्थ- हे मनुष्यों! (यस्मात) जिस परमेश्वर से (पुरा) पह्ले (किमूचन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ (यः) जो सब ओर (आवभूव) अच्छी प्रकार से वर्तमान है। जिसमें (विश्वा) सब (भूवनानि) वस्तुओं के आधार सब लोक वर्तमान नही (स एव) वही षोडसी सोलह कला वाला (प्रजया) प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता (त्रीणी) तीन (ज्योतिषि) तेजोमय, बिजली, सूर्य तथा चन्द्रमा रूप प्रक़ाश ज्योतियों (सचेत) संयुक्त करता है।

भावार्थ- जिससे ईश्वर अनादि है इस कारण उससे पहले कुछ भी हो नहीं सकता। वही सब प्रजाओ में व्याप्त जीवों के कर्मो को देखना और उनके अनुकूल फल देता हुआ न्याय करता है। जिसने प्राण आदि सोलह वस्तुओं कलाओं को बनाया है। जिससे वह षोडसी कहलाता है। (प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक और नाम) यह षोडस कला प्रश्नोपनिषद ३२/५ में है। यह सब षोडस रूप जगत परमात्मा में है। उसी ने बनाया और वही पालन करता है। परमात्मा की सृष्टि देख एक बार सभी को उसकी वैज्ञानिक कंलाओं पर मूक हो जाना पड़ता है। यह १६ कलाओं का निर्देश उस वेदमंत्र में है। और तीन अग्नियों का विवरण है। इस विषय को लेकर वैज्ञानिक, पौराणिक और आध्यात्मिक सभी अपने चिन्तन अनेक रूपों में प्रकट कर रहे हैं। पौराणिक विचारधारा के लोग कोई भी विषय लिए तो वेदों से ही हैं। अन्य कोई साधन ही नहीं जो ब्रहमाण्ड तथा उसके

विषय का निरूपण करा सके। पर ऋषियों की व्याख्या न ले, अपने धर्म गुरूओं और आचार्यों की मनमानी व्याख्या को स्थान दिया है। वेद ज्ञान की व्याख्या केवल व्याकरण एवं अनुमान से ही सम्भव नही है। इसके लिए साधना परम आवश्यक है। इसी से कहा गया है कि -

समाधि से ही समाधान संभव है यह अन्तर दृष्टि साधना से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी से उन्हें ऋषि कहा गया। उन्हीं के ग्रन्थ और विचारों को महर्षि दयानन्द ने मान्यता दी।

उदाहरणार्थ- मूर्ति पूजा को लें तो पौराणिक भाइयों ने जो विरोध की खाई खोदी वह आज विज्ञान के युग में भी गहरी होती जा रही है और उसी से स्वार्थी भावनाओं के कारण मानवता का पतन तथा सत्य ज्ञान व मानवीय भावनाओं का अभाव दिन प्रतिदिन् बढ़ता ही जा रहा है। जिससे अविद्या की वृद्धि तथा सत्य ज्ञान से दूर होते जा रहे हैं।

यह १६ कलाओं को लेकर ही देखें तो जो जबरन श्री राम और श्री कृष्ण में घटायी जा रही हैं। श्री राम १२ कलायुक्त हैं और श्री कृष्ण १६ कलायुक्त हैं। यह कला शारीरिक सजावट से लिया जा रहा है। वैदिक कलाओं का मैं विवरण तथा व्याख्या दे रहा हूँ उन्हें देख आप स्वयं सत्य असत्य का निर्णय करें।

१. प्राण- परमात्मा ने सृष्टि बनायी और उसको गति दिया। यह गति देने वाला तत्व प्राण है। प्राणियों में यह १० प्राणों के रूप में निहित हो १० प्रकार के कार्य को करने वाला यही है, बिना प्राण के आत्मा स्वाभाविक गुण इच्छा ज्ञान प्रयत्न की भी पूर्ति नहीं कर सकती। इसे गति से ही राग द्वेष और उनसे सुख दुख की उत्पत्ति होती है। इसी आधार पर मोक्ष तथा बंधन भी निर्भर है। १० प्राण हैं प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये मुख्य प्राण तथा नाग, कूर्म, क्रिंकल, धनज्जय, एवं देवदत्त। ये दस प्राण ही शरीर को संचालित करते हैं। इनका विभिन्न स्थानों में वास है। प्राण ही शक्ति है, इसी के सहारे सब इन्द्रियां अन्तःकरण आदि टिके हैं। यही बल है इसी को स्वस्थ्य रख और इसी की

आरोग्यता से पूरी उम्र जीवन यापन कर सकते हैं। इसको गति देने वाला इससे भी सूक्ष्म है और इनके अन्दर से अपने विज्ञान द्वारा गति देता है। इसी से उसका नाम भू: है। जिसके गति या कर्म से सुख का अनुभव प्राप्त हो वह भुवः है। और वही कर्म का फल देने वाला स्वः भी है। ये गति शील कार्य प्राणन क्रिया से ही सम्भव है।

२. श्रद्धा- यह सत् से बनी है। श्रद्धा किसी के प्रति उसके श्रेष्ठ गुणों पर ही निर्भर है। यह परमात्मा का विज्ञान या कला है। कहां से उत्पन्न होती है, कैसे उत्पन्न हो जाती है? क्षण भर में कहां पहुंचा देती है? कहा नही जा सकता। संसार के सभी श्रेष्ठ कार्यों में श्रद्धा का महत्वपूर्ण स्थान है। यही श्रद्धा परमात्मा तथा मोक्ष को भी प्राप्त करा देती है। पर यही यदिं वेद का सहारा छोड़ देने पर सत्य से बहुत दूर हो जाती है तो उसका नाम अन्धी श्रद्धा हो जाती है। आज अन्धी श्रद्धा का बोलबाला है। इसी के कारण मूर्ति पूजक परमात्मा की कितनी मूर्तियां बना डाले। स्तुति, उपासना, प्रार्थना का रूप विगाड़ा तथा तीर्थों और गुरूडमवाद को जन्म दिया। जहां भोली जनता दोनों हाथ लूटी जा रही है। यह सब अन्धी श्रद्धा का ही परिणाम है। इतना ही नहीं ठग, धूर्त, लुटेरे, चोर, बदमाश, स्मगलर, आतंकवादी सभी मानव घातक तन्तु इसी श्रद्धा का सहारा ले सारी मानवता को भ्रष्ट नष्ट और दुख के कारण बने हुए हैं। सत्य और न्याय, कर्म में विश्वास और आध्यात्म में श्रद्धा का स्थान नही रह गया। सर्वत्र पाखण्ड का बोलबाला है यह परमात्मा की दी हुई कला है जो शुभ, कर्म, कल्याण, सम्मान, उपासना आदि के लिए दिया पर उसका रूप ही हमने बदल डाला।

३. आकाश- आकाश परमात्मा की बनायी हुई कला नहीं है। क्योंकि तीन तत्व अनादि तथा सत है। १. आत्मा २. परमात्मा और ३. प्रकृति, आकाश को सजाने की कला परमात्मा में है। सारे ग्रह, नक्षत्र, तारे, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि शून्य में टिके हैं। इसमें गुरू भाग जो है, उसी के आकर्षण से सब शून्य में टिके हुए हैं। गुरू भाग भी महर्षि दयानन्द कहते हैं कि अपने परिधि (दायरे) में गतिशील हैं। वह स्थिर रह कर टिक नहीं सकता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैतपुरूषः पादोऽस्पेहा भवत्पुनः।
ततो विष्वड् व्यक्रामत्साशनानशनेऽ अशिः।

यजु०३१-४

यह मंत्र पुरूष सूक्त का है। यह परमेश्वर कार्य जगत से पृथक तीन अंश से प्रकाशित हुआ और एक अंश से अपने सामर्थ्य से सब जगत को बार-बार उत्पन्न तथा प्रलय करता है। तथा इस चराचर जगत में व्याप्त हो कर हमेशा स्थित भी रहता है।

परमात्मा जड़ और चेतन जगत (गतिशील) सभी वस्तुओं को बनाकर सृष्टि रचना करता और प्रलयं भी करता है। और सारा कार्य शून्य आकाश में बिना आधार के टिका हुआ है। देखा जाय तो इस सारी सृष्टि का आधार वह परमेश्वर ही है। यही तीन मंत्रों में भी है। यही उसकी कला है। जो निराधार का भी आधार या वैज्ञानिक हो गुरूत्वाकर्षण पर सबको टिकाये है। यह उसकी कला ही है। उतने बड़े आकाश का एक अंश भी परमाणुओं, तत्वों तथा सृष्टि से खाली नही है। फिर भी सबके लिए अवकाश आवागमन बना हुआ है। तथा सभी इसी में गति कर रहे हैं।

४. वायु-

चन्द्रमा मनसो जातश्रक्षो सूर्यो अजायतः।
श्रोता द्वायुश्च मुखादग्निर जायतः।।

यजु. ३१/१२

भावार्थ- यह जगत कारण से कार्य रूप में ईश्वर ने उत्पन्न किया है। मन का कारण चन्द्र लोक, नेत्र का कारण सूर्य लोक, श्रोत सुनने की शक्ति दस प्राण वायु आकाश से, अग्नि से भक्षण स्वरूप मुख, औषधि वनस्पति रोमों के तुल्य, नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य है, ऐसा जानना चाहिए। वायु का महत्व श्रोत का भी श्रोत साथ ही दस प्राणों को संचालित, स्पर्शन शक्ति सारे शरीर की क्रियाशीलता इसी का कार्य है। ब्रहमाण्ड में वृष्टि आदि सारी क्रियाशीलता वायु का ही कार्य है। पृथ्वी को लपेटे हुए है। अनेक प्रकार से

गतिशील किये हुए हैं।

दीर्घतमा ऋषि

यद क्रन्दः प्रथमं जायमाना उद्यान्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य वक्षा हरिणस्य वाहू उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन।।
ऋ.१/१६३/१

अगर सीधा अर्थ प्रथम सृष्टि काल में क्रन्दन (धमाका) हुआ वैज्ञानिक भी मानते हैं कि एक आवाज हुई पूर्ण कारण से अन्तरिक्ष में और एक प्रकाश अर्वन (अश्वाऽग्नि) जो परमात्मा की शक्ति सारे परमाणुओं पर छा गया 'गुरूदत्त'।

यामेनं दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्रं एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशना सगृणत् सूरादश्चं वसवो निरतिष्ट।।
ऋ.१/१६३/२

सत, रज और तम की साम्या अवस्था में पड़ी प्रकृति धमाके के साथ ईश्वरी प्रकाश उस पर छाया तो क्रिया हुई। यह क्रिया त्रेत में आकर्षण और विकर्षण द्वारा हुई। यह अश्वाग्नि द्वारा हुई और इसी क्रिया का नाम मातरिश्वा है। इसे ईश्वरी वायु की कला कह सकते हैं। और इसी क्रिया से वायु द्वारा परमाणुओं की गति, द्वैषरेण, त्रेषरेण, चतुर्थेण, षष्टेण से व्यवहारिक वायु अग्नि जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। यह कला परमात्मा की है। अन्य के सामर्थ्य से यह विज्ञान अलग है।

५. अग्नि– सृष्टि के आदि काल में एक धंमाका हुआ जिसे विज्ञान भी मानता है। और वेद मंत्र ऋग्वेद १/१६३/१

यदकन्द्रः प्रथम जायमाना उद्यतसमुद्रान्दुत पुरसात'

विस्फोट हुआ उसंसे अग्नि पैदा हुई और सभी परमाणु पर छा गई। वे गतिशील हुए। इस अग्नि को विश्वाग्नि प्राण शक्ति या अर्वन आदि नाम दिये गये हैं। इसके आकर्षण विकर्षण से वायु और तब परमाणु से अणु आदि बन वस्तुओं की रचना हुई। उसी तेज मातरिश्वा वायु द्वारा अग्नि के परमाणु

(ईश्वरी) शक्ति से सूर्य तथा सूर्य और ईश्वरी अग्नि से इन्द्रागिनी (विद्युत) तथा सूर्य से जातवेदा भौतिक अग्नि जिसका प्रयोग हम करते हैं तथा इन्द्राग्नि का भी औद्योगीकरण में प्रयोग करते हैं। ईश्वरी अग्नि अभी मनुष्य के वश में नही है। यह परमात्मा की कला है।

६. जल- शुद्ध जल तथा अग्नि कणों से जल बना। वैज्ञानिक ऑक्सीजन और हाइड्रोजन दोनों के २:१ के अनुपात से पानी बनता है। पर इससे मानसूनी वर्षा नहीं कर सकते। जो सृष्टि के आदि से होती चली आ रही है। साथ ही पानी भी एक ऊर्जा है। इसमें ऑक्सीजन और नाइट्रोजन दोनों जलनशील तत्व हैं। अगर मनुष्य इनके कणों को अलग कर सके तो पेट्रोल, डीजल की समस्या हल हो जाय और अपार भण्डार प्रकृति में इसका है। यह क्रिया या कला परमात्मा की है।

७. पृथ्वी- पृथ्वी के शुद्ध कणों तथा जल कणों के मेल से पृथ्वी बनी है। और सारे भूमण्डल में ३/४ भाग (७१%) समुद्र तथा १/४ (२९%) भाग पृथ्वी है। पृथ्वी और जल के गुरूत्वाकर्षण आकर्षण पर पृथ्वी टिकी हुई है। यह परमात्मा की ही कला का फल है।

८. इन्द्रियां- पंच तत्व के सूक्ष्म तन्मात्राओं से ज्ञानेन्द्रियां तथा स्थूल तत्व से कर्मेन्द्रियों की रचना है। यह अन्न, फल, दूध, औषधि, वनस्पति के प्रयोगों से होता है। यह परमात्मा ही कर सकता है। इन्हीं कारण (इन्द्रियों) के सहारे जीवात्मा अपनी इच्छिक कामनाओं को अपने प्रयत्न द्वारा प्राप्त कर सकती है। तथा ये इन्द्रियां जीवात्मा को ज्ञान आदि सूचना देती भी हैं और अपने जीवनी शक्ति के लिए भोगों को लेती भी हैं और इन्हीं भोगों के पचड़ों में सारा विश्व उलझा हुआ है।

९. मन- भोज्य पदार्थों के सबसे सूक्ष्म तत्व से मन बनता है तथा उसी अन्न का विकार मल द्वारा निकल जाता है। सूक्ष्म अंश रस से रक्त, मांस, मज्जा, मेघ, हड्डी, तथा वीर्य आदि धातु निर्माण कितना वैज्ञानिक है और इसी वीर्य के सहारे जीवनी शक्ति चलती है। यह अद्भुत कला है।

१०. अन्न- शरीर में जितने मीनिरल धातु तत्व आवश्यक है, उन सभी का अन्तरिक्ष में भण्डारण है। वहीं से सोम रूप में वायु, वर्षा, सूर्य और चन्द्रमा के माध्यम से पृथ्वी तथा वनस्पतियों को बराबर मिला करते हैं। जिससे उनका विकास होता रहता है। यह क्रिया परमात्मा ने अनेक प्रकार के अन्नों और रसों के माध्यम से किया है। इस कला में किसी की सहायता नही ली, यही भोज्य पदार्थ है।

११. वीर्य- इस भोग्य पदार्थ को जीव (प्राणी) किसी न किसी रूप में खाते हैं। उनके रस से सात धातुएं बनती हैं। सबसे सूक्ष्म तथा प्रभावशाली धातु वीर्य है। जिस पर जीव की जीवनी शक्ति तथा वंश वृद्धि भी होती है।

१२. नाम- सृष्टि में अनन्त प्रकार की वस्तुएं हैं। पर गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार उनकी संज्ञा भी है तथा भाषा का ज्ञान भी परमात्मा ने ही दिया है। जिससे उसे जाना जा सके।

१३. तप-

यह परार्थ सेवा परमात्मा का बहुत बड़ा तप है।

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्य जायत।
ततो रात्र जायत ततः समुद्रोऽअर्णवः।।१
समुद्रादर्णावादधि संवत्सरोऽअजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।२
सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमूकल्पयत्।
दिवंच पृथिवींचान्तरिक्षमथो स्वः।।१३।

ऋ.१०/१९०/१-३

सन्धा के इन अघमर्षण मंत्रों में परमात्मा के तप का ही वर्णन हैं।

१. अर्थ- सर्वत्र प्रकाशमान ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से वेद विद्या और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई। उसी परमात्मा के सामर्थ्य से प्रलय उत्पन्न हुआ

और उसी सामर्थ्य से महासमुद्र उत्पन्न हुआ।

२. सारे ब्रह्माण्डो को सहज ही अपने वश में रखने वाले परमेश्वर ने समुद्र की उत्पत्ति के बाद सम्बत सर और इसके विभाग, क्षण, मुहूर्त प्रहर दिन रात आदि को रचा।

३. सब जगत का धारण-और पोषण करने वाले परमात्मा ने जैसे पूर्व काल में सूर्य और चन्द्रमा रचे, वैसे कल्प में भी रचे हैं। ठीक उसी प्रकार द्यो, लोक, पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष और आकाश में जितने लोक हैं उनका निर्माण भी पूर्व काल के अनुसार ही किया। इससे बड़ा तप क्या हो सकता है? यह परमात्मा की ही कला है।

१४. मन्त्र- अर्थात् विचारणा। प्रत्येक ऋचा में विचार भरे पड़े हैं। जो सारे सृष्टि की विद्या, विधि, उपादेयता, नियमितता, उपयोगिता का वर्णन कर रहे हैं। इस कारण वे मंत्र हैं जो परमात्मा के ज्ञान से ही सम्भव है।

१५. कर्म- परमात्मा के तीन कर्म हैं। सृष्टि करना, पालन करना, न्याय एवं व्यवस्था और कर्मों का फल देना। पूरी सृष्टि में यह क्रिया अनादि काल से चल रही है। और अनादि काल सृष्टि पर्यन्त रहेगी। परमात्मा के नियम अटल होते हैं। और प्रकृति के नियम भी परमात्मा के आदेशानुसार अटल होते हैं। मनुष्य ही अनियमित होने से दुखी रहता है।

१६. लोक- परमात्मा की सृष्टि निष्प्रयोजन नहीं है। अतः सबका किसी न किसी प्रकार का प्रयोजन है इसी से इसे बसु कहां गया है। हर जगह सृष्टि है थोड़ा बहुत आकार प्रकार में देशकाल परिस्थिति के अनुसार भले ही भिन्न हो। पर प्रकार एक जैसा ही होगा, यह कार्य परमात्मा की कला है।

इस प्रकार दृष्टिपात करने पर ज्ञात हुआ कि ये १६ कलायें उस निराकार प्रभू की है। जिसने वेद ज्ञान भी दिया है। इसे कोइ साकार या एक देशीय शक्ति न बना सकती है न धारण कर सकती है।

एतावानश्च महिमानः जायंश्च पुरूषः।
पादोअस्य भूतानि त्रिपाद दिवाभृतिः।।

उस परम पिता परमेश्वर ने एक पाद से सृष्टि बनायी और ३/४ पाद से उसे धारण कर व्यवस्था कर रहा है।

सोलह कलाओं को गति देने में अग्नि का वहुत वड़ा हाथ है। यह तीन रूप में है। सूर्य, विद्युत और भौतिक अग्नि, एक चौथी अग्नि है, ईश्वरी शक्ति जिसके अनेक नाम है, प्राण, तेज, अश्व, अर्व, अग्नि, वायु, मातरिश्वा नामों से जानी जाती है। यह कहीं मनुष्य के अधीन रह कर कार्य करते देखी नहीं गयी। इस अग्नि को न मानव प्रदिप्त कर सकता न बुझा सकता है। मनुष्य जातवेदा अग्नि को जला या कार्य कर सकता है। इन्द्राग्नि वेद में देवता नाम से आया है। यह इन्द्राग्नि प्राण तथा अग्नि के रूप में जानने पर भी इसे मनुष्य जागृत तथा शान्त कर सकता है। आज वैज्ञानिक इन्द्राग्नि की शक्ति पर आधिपत्य कर औद्योगीकरण करने में सफल है। सूर्य की धारायें जो पृथ्वी पर आती है। वह इन्द्र की शक्ति है। पर सूर्य केवल प्रकृति का परिणाम नहीं प्रकृति और ईश्वरी शक्ति के योग का परिणाम है। इन्द्र की शक्ति परमाणुओं से चिपक जाती है। पर अनादि परमाणु से पृथक अपना अस्तित्व रखती है।

अगर अग्नि न होता तो सृष्टि का सारा क्रम बन्द हो जाता। अतः वायु और अग्नि सृष्टि संचालन के विज्ञान प्रभु प्रदत्त है। इस प्रकार विचारने से ज्ञात हुआ कि श्री राम और श्री कृष्ण में ये कलायें देखना काल्पनिक है तथा अनाधिकार चेष्टा ही हो सकती है वास्तविकता उस ब्रहमाण्ड के नियन्ता ईश्वर की ही ये कलायें हैं। जिन पर सृष्टि का सृजन हुआ है।

***

५०. समन्वयवादी वैदिक धर्म

विश्व के किसी भी धर्म या सम्प्रदाय में हमें जीवन का समन्वय नहीं मिलता। चाहे ईरानी हो या कुरानी हो, पौराणिक हो या बौद्ध हो धर्म को ईश्वरी व्यवस्था को मसीहों के माध्यम से माना है। लेकिन वैदिक धर्म शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्म का समन्वय है। यह वैदिक धर्म की विशेषता है। इस बात को ऋषि दयानन्द ने समझा और धर्म से अध्यात्म को जोड़ अन्यों की आखें खोल दी। साथ ही इसमें परमार्थ और स्वार्थ दोनों का समन्वय है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदो भयं सह।
विद्या यामृत मश्नुते।।

व्यवहार जगत परमार्थ से कम महत्व का नहीं अतः हमें दोनों के महत्व को समझना चाहिए यही जीवन है।

वेद कहता है वह व्यक्ति महामूर्ख है जो स्वभौतिक सुखो को ही अपना जीवन बना लिया है और वह उससे भी मूर्ख है तथा अंधकार में है जो केवल दूसरे पर ही ध्यान देते हैं।

अंधः तमः प्रविसन्ति येऽसंभूति उपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या रता।

अतः संसार का विकास स्वविकास के नींव पर ही टिका है। जैसा अपना विकास होगा वैसा ही समाज बनेगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति एक आदर्श समाज की परिकल्पना के लिए, स्वविकास को नहीं नकार सकता। अतः व्यक्ति के विकास से ही समाज विकसित होता है।

अध्यात्म में एकांगी विकास में केवल ज्ञान को ही मोक्षप्रद बताया। यह
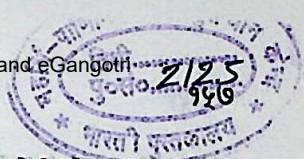
अंधरापन या बालकपन हो सकता है। अगर ऐसी बात होती तो परम शुद्ध बुद्ध और निर्लेप आत्मा को शरीर धारण की आवश्यकता ही क्या थी? मनुष्य योनि कर्म योनि है और इस शरीर का सदुपयोग कर्म से ही है। मोक्ष कितना ही आनन्द प्रद हो पर है सुकर्म का ही फल, साथ ही धर्म की परिभाषा ही सुकर्म है। वही वेद कहता है।

वायुरऽनिलंऽमृतं मथेदं भस्मान्तं शरीर।
ओ३म् कृतोस्मर क्लिवेस्मर कृतं स्मर।।

परमात्मा का नाम जहां ओ३म् को जानों, वहीं अपने भले बुरे कर्मों को भी जानों शरीर तो जल भुन जायेगा। पर कर्म तेरा पीछा नहीं छोड़ेगा। अतः सुकर्म के लिए ही ज्ञान है। अकेला ज्ञान लंगड़ा है। इसलिए कैसा कर्म करो, कर्म की व्याख्या वेद करता है।

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्य थेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

तथा

ईशा वास्य मिद, सर्व यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुंज्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

अर्थ- कर्म करते सौ वर्ष तक जीने की कल्पना कर, लेकिन उसमें लिप्त न हो, तेरा लिपायमान होना ही बन्धन बन जायेगा, ज्ञान नही बचा सकता। ऐसे ही दूसरे मंत्र में।

ऐसे ही इन सांसारिक भोगों का लोभ न कर, यह किसी प्रयोजन से परमात्मा ने बनाया है। अतः भोग कर पर त्याग पूर्वक, यह शरीर को चलांने मात्र के लिए भोग है। यह भोग और त्याग का अपूर्व मेल है। वरना 'केवलाघो भवति केवलादी'

साथ ही श्रद्धा तर्क का भी समन्वय उपयुक्त है। श्रद्धा से परमात्मा तक साध्य है। पर तर्क का साथ छोड़ते ही यह भावुकता में अन्धी हो जाती है जो

अनर्थकारी सिद्ध होती है।

श्रद्धायाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः
श्रद्धया भगम मूर्णानि श्रद्धया वचसा वेदोऽसि।।

श्रद्धा सभी ऐश्वर्यों को दे सकती है पर-

'जो जागार तमृचं कामयन्ते जो जागार तम सामयत्ति'

यह श्रद्धा जागार के लिए ही कल्याणकारी है। तर्क से विहीन श्रद्धा अज्ञानता के कुवें में डाल देती है। अन्यत्र तर्क को श्रद्धा का विरोधी समझे, अज्ञानता के कूवें में गिरं रहे हैं।

'मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्'

यह मंत्र भी हृदय (श्रद्धा) तथा मस्तिष्क (तर्क) को परमात्मा ने जोड़ कर जीव का बहुत बड़ा उपकार किया है। बिना तर्क के अर्थात बिना मस्तिष्क के योग में श्रद्धा भावुकता से विह्ल होकर छल कपट से छली जाती है। जैसा कि आज तीर्थों और मन्दिरों में भोली जनता के साथ हो रहा है। साथ स्थित प्रज्ञ योगी के लिए श्रद्धा तर्क न्याय और सत्य का दर्शन कराती है। अतः जीवन में इसकी परम उपयोगिता है।

भक्ति कालीन ग्रन्थों की उपासना स्तुति तथा प्रार्थना, दैन्यता, अकिंच्नता, दरिद्रता, पातकी, अधर्मी तथा पापी मानता है। और मान कर रोना, बिलखना, असहाय समझना निरी मूर्खता ही है। वैदिक सिद्धान्त मनुष्य को पुरूष माना है। जिससे तात्पर्य पुरूषार्थ से है। योगदर्शन पुरूषार्थ का ही उपदेश करता है। अपने पुरूषार्थ से मनुष्य यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा सहज सुलभ परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। यह आत्मा "इन्द्रस्य युज्य सखा" है। "द्वा सुपर्णो सजुना सखाय", परमात्मा को सखा माना गया है। सखा से कोई पर्दा नही होता है वैसे भी परमात्मा सब कुछ जानता है। पुरूष में दैवी शक्ति है। वह आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त कर, परमात्मा जो उसका जन्म सिद्ध अधिकार है, उसे प्राप्त करे। परमात्मा के गुणों से गुणान्वित हो और-

ओं तेजोऽसि तेजो मयि धेहि
ओं वीर्यमसि वीर्य मयिधेहि
ओं बलमसि बलं मयि धेहि
ओं ओजोऽसि ओजो मयि धेहि
ओं मन्युरसि मन्यु मयि धेहि
ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि

वास्तविक मित्र के सखा के यही लक्षण है कि सखा का गुण सखा में भी हो। न परमात्मा अकिंचन है न अकिंचन को देखना चाहता है। मनुष्य उसका अमृत पुत्र है। उसका शरीर पवित्र मन्दिर है। उसमें सप्त ऋषियों का और चौदह देवताओं का वास है।

परमात्मा का सखा और पुत्र होने पर भी अपने को हीन प्राणी, पतित, पापी, दुर्बल मानना अशोभनीय है। हम अपनी आत्म शक्ति को जगायें और संसार सागर को आसानी से तर जायें। वर्णाश्रम व्यवस्था इस सरल सहज मार्ग का ही द्योतक है। ये सारे संसार के सुख और भोग, भोगते, धर्मानुसार चल मानव चोला मुक्ति का दरवाजा ही है। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि "साधन धाम मोक्ष का द्वारा"। फिर रोने पापी बनने से क्या मिल रहा है? रोना तो अधर्म पर है हिंसा पर है, व्यभिचार पर है अनाचार पर है।

वहां एक बार भी पश्चाताप करते तो जीवन बन जाता। उसमें आकण्ठ डूबे हो, तो केवल रोने से काम नहीं बनेगा। पुरूषार्थ से विजय करना होगा, इसी का नाम योग है।

वेद ब्रस्म वर्चश्व को, यश को, तेज को, ऐश्वर्य को, महत्वाकांक्षा को, निष्कामता आदि को मना नहीं करता और न बाधक है।

स्तुता मया वरदा वेद माता प्रचोदयन्ताम।
पावमानी द्विजानाम आयुः प्राणं, प्रजां, पशुं किर्ती द्रविणं
ब्रस्मवर्चसं मह्यं दत्वा ब्रजत ब्रस्मलोकान।

ब्रह्मलोक जाने या प्राप्त करने में ये सभी बाधक नहीं बल्कि साधक हैं। अतः ऐसे न्याय, सत्य, कर्मफल पर टिका पुरूषार्थ भोग, योग, ज्ञान, कर्म, श्रद्धा, तर्क पूर्ण सुखद वैज्ञानिक जीवन कोई सम्प्रदाय या धर्म देने में सहायक नहीं है। अतः वेद की शरण में आ शान्ति प्राप्त करें। यह जीवन का रहस्यमय समन्वय ही वेद त्रयी है। जहां ज्ञान, कर्म का समन्वय, उपासनीय जीवन है।

-: समाप्त :-

-: जीवन जीने की कला है :-

(सुख-शान्ति, स्वस्थ-सानन्द व दिर्घायु रहने के लिए)

1. प्रातः ब्रह्म मुहुर्त अर्थात $2\frac{1}{2}$ बजे से 4 बजे के बीच, ऋषी मुहुर्त 4 से 5 बजे के बीच अन्यथा मनुष्य मुहुर्त 5 से 6 बजे के बीच अवश्य उठ जायें। यह तभी सम्भव होगा जब रात्रि 9 से [illegible] के बीच सोने की आदत डालेगें। 2. उठते ही मुँह–हाथ धोकर [illegible] के पात्र [illegible] का रक्खा हुआ जल भरपेट धीरे–धीरे पीवें, थोड़ी देर टहलकर शौच जायें। [illegible] के बाद तुरन्त स्नान से निवृत हो लेवें। 3. शरीर को स्वस्थ रखने [illegible] भ्रमण, हल्का व्यायाम, आसन, प्राणायाम में कम से कम 1 घण्टे का समय लगावें। 4. थोड़ा समय आत्म चिन्तन एवं प्रभु चिन्तन में भी देवें, यदि सम्भव हो तो संध्या हवन नित्य किया करें। 5. चाहे आप विद्यार्थी हों, नौकरी पेशा अथवा व्यापारी, अपने मधुर व्यवहार, ईमानदारी, पुरुषार्थ व कार्य कुशलता से उन्नति के शिखर पर चढ़ सकते हैं। 6. भोजन :– तामसिक आहार–अंडा, मांस, मछली, सुर्ती, सुपाड़ी, पान गुटखा, बीड़ी, सिगरेट, हिरोइन, शराब इत्यादि से दूर का भी वास्ता नहीं रक्खें। राजसिक आहार–पूड़ी–कचौड़ी, तली भुनी सब्जियाँ, तीखी, तेल, मिर्च, अचार, हलुआ, मिठाई, ठंढे बजारू पेय पदार्थ, आइसक्रीम, नमकीन, बिस्कुट, पावरोटी इत्यादि चीजों से बचने का प्रयास करें। मजबूरी में कम से कम इस्तेमाल करें। सात्विक आहार–दाल, चावल, रोटी–सब्जी, दूध, दही, मठ्ठा, अंकुरित अन्न, नींबू, हरी सब्जियाँ, सलाद, सस्ते मौसमी, फल, सब्जी व फलों के रस का इस्तेमाल करें।

नोट–1. भोजन चबा–चबा कर और पानी को घूट–घूट खावें–पीवें। यदि चार रोटी की भूख हो तो दो रोटी खावें। एक भाग हवा व एक भाग पानी के लिए छोड़ देवें, सदैव के लिए पेट विकार से मुक्त रहेगें। 2. रात्रि का भोजन हल्का व थोड़ा करें, सोने से 2 घण्टे पूर्व करें, दूध भी एक घण्टे पूर्व पीवें। हाथ–पाँव धोकर थोड़ा टहलें, प्रभु भक्ति के गीत गुनगुनावें, आत्म निरीक्षण करें व प्रभु से अगले दिन के लिए श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए शान्ति से सो जावें। 3. दिन में कम से कम दो घण्टे मौन व्रत रक्खे, वाणी श्रेष्ठ व बलवान होगी। 4. प्रकृति से प्रेम करें, इसमें ईश्वर के स्वरूप का सच्चा दिग्दर्शन होगा, वर्ष में एक बार समय निकाल कर किसी झील, झरने, कंदरायें, गुफायें, नदी, समुद्र, पहाड़, घाटियों के बीच कुछ समय गुजारें इससे बड़ी शान्ति मिलेगी।

राजेन्द्र योगी

स्वामी केवलानन्द सरस्वती जी, वैदिक योग साधनाश्रम में
श्री राजेन्द्र योगी जी को वानप्रस्थ की दीक्षा देते हुए।